५५/२२२

मन्दिर प्रवेश विमर्श

('हरिजन-स्मृति', 'हरिजन मन्दिर प्रवेश' और 'मन्दिर प्रवेश' का उत्तर)

लेखक और प्रकाशक
लालविहारी मिश्र
गोयनका सं० महाविद्यालय ललिताघाट, काशी

मूल्य ॥=)

मन्दिर प्रवेश विमर्श

हितैषी कौन ?

आजकल हमारे अन्त्यज भाइयोंको मंदिर प्रवेशके लिए तरह-तरहसे उभारा जा रहा है। उन्हें बतलाया जाता है कि 'मंदिरमें घुसकर मूर्त्ति-स्पर्श सहित पूजा करनेमें ही उनका हित है। अतः जो लोग मंदिर प्रवेशका प्रतिरोध करते हैं वे घोर अनुदार, भयानक स्वार्थी और कट्टर रूढ़िवादी हैं। वे शास्त्रतक माननेको तैयार नहीं; फिर वे हरिजनोंके हितैषी कैसे हो सकते हैं? अतः अन्त्यज भाइयोंको उनकी बात न मान मंदिरमें घुस जाना चाहिए और उसी तरह पूजन करना चाहिए जैसे कोई सवर्ण करता है।'

इस प्रकारका प्रचार कई वर्षोंसे चल रहा है। इसका परिणाम यह हुआ कि अन्त्यज भाई इस बहकावेमें आ गये और मंदिर प्रवेशका आन्दोलन चलाने लगे। प्रारम्भसे ही हमारा यह नम्र निवेदन रहा है कि अन्त्यज भाई पहले इस विषयपर गहराईसे विचार कर लें तब उसे व्यवहारमें उतारें। क्योंकि यह विषय उनकी उपासनासे सम्बन्ध रखता है और अपना असर उनकी इस लोक और परलोककी उन्नति एवं अवनतिपर पूरा-पूरा डालता है। कर्माकर्मका निर्णय कोई आसान काम नहीं है[१]। बड़े-बड़े विद्वानोंको भी इनके निर्णयमें भ्रम हो जाता है। और उस परिस्थितिमें, जब कि धुआँधार प्रचारसे जनमन धूमिल हो उठता है, निर्णयका यह काम और कठिन हो जाता है। अतः हरिजन बन्धुओंको

(१) किं कर्म किमकर्मेति कवयोप्यत्र मोहिताः। (गीता ४।१६)।

सावधानीसे तहतक पहुँचकर यह निर्णय कर लेना है कि मंदिरमें प्रवेशकर स्पर्शसहित पूजामें उनका हित निहित है या सृष्टिसे लेकर आजतक, अरबों वर्षोंसे, जिस शास्त्रीय पद्धतिसे उनकी पूजा होती आ रही है वह उनके लिए कल्याणकारक है ?

अधिकारीभेदसे पूजाभेद आवश्यक

उपासनामें अधिकारी भेदसे पूजाका भेद नितान्त अपेक्षित है। शास्त्रोंने जिसके लिए पूजाका जैसा प्रकार बतलाया है उसके लिए पूजाका वही प्रकार हितकारक हो सकता है। दूसरोंकी पूजाका प्रकार तो उलटे हानिकारक हो जाता है। एक उदाहरण ले लिया जाय। हिन्दू धर्मशास्त्रोंने नारी जातिको पूजनीय बतलाया है[1]।

प्रत्येक पुरुषको नारीकी पूजा करनी होती है। मान लीजिए एक युवती नारी है। उसे अपने पिता, भ्राता, पति, देवर, पुत्र, बहू एवं शिष्यसे पूजा प्राप्त करनेका अधिकार है[2]। किन्तु इनमेंसे प्रत्येककी पूजाका प्रकार अपना अलग-अलग अस्तित्व रखता है। देवर[3] और पुत्रको प्रतिदिन पैर छूकर पूजा करनेका अधिकार है किन्तु तरुण शिष्यको वह अधिकार प्राप्त नहीं। वह भूमि छूकर ही दैनिक प्रणाम

---

१ यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः। यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः। (मनुस्मृति ३।५६)। जिस कुलमें नारियोंकी पूजा होती है; वहाँ देवताओंकी कृपादृष्टि रहती है। और जहाँ उनकी पूजा नहीं होती वहाँ देवताओंकी कृपा दृष्टि न रहनेसे सब यज्ञ आदि क्रियाएँ निष्फल हो जाती हैं।

२ पितृभिर्भ्रातृभिश्चैताः पतिभिर्देवरैस्तथा। पूज्या भूषयितव्याश्च बहु कल्याणमीप्सुभिः। (मनुस्मृति ३।५५)। ३. भ्रातृभार्योपसंग्राह्या सवर्णाऽहन्यहन्यपि (मनु २।१३२)। (अर्थात् बड़े भाईकी सजातीया स्त्रीको प्रतिदिन चरण छूकर प्रणाम करना चाहिए।)

कर सकता है। बहू[1]को उसके देहमें तेल और उबटन लगाकर नहवाने तथा माला आदिसे बाल गूँथनेका अधिकार है। किन्तु पिता, तरुण पुत्र और शिष्यको[2] वह अधिकार प्राप्त नहीं है। इसी तरह पतिके लिए जो विहित है वह पिता, पुत्र, देवर, शिष्यके लिए निषिद्ध है।

इस दृष्टान्तसे स्पष्ट है कि नारीके प्रत्येक पूजकके लिए पूजाका प्रकार भिन्न-भिन्न है तथा एकके लिए विहित प्रकार दूसरेके लिए पातक है। उस युवती नारीका अंगमर्दन और बाल गूँथना उसकी बहूके लिए पुण्यप्रद है किन्तु पूजाका यही प्रकार तरुण शिष्य आदिके लिए पाप बन बैठता है। इसी तरह ऋतुकालाभिगमन पतिका कर्तव्य है किन्तु पिता, पुत्र, देवर और शिष्यके लिए अकर्म है—महापातक है। ऐसी स्थितिमें यदि कोई "मानव-मानव एक समान" का नारा लगाकर तरुण नारीकी पूजामें समता लाना चाहता है तो यह उसकी नासमझी समझी जायगी; और उसकी यह नासमझी कहीं कार्य रूपमें परिणत की गयी तो पिता, पति, पुत्र, शिष्य आदि सभी पूजकोंको तथा पूज्यको भी जहन्नुममें घसीट ले जायगी! इस स्थितिमें उन पूजकोंके सच्चे हितैषी तो वे ही माने जायेंगे जो पूजाकी एकरूपतासे उन्हें रोकेंगे और उनके अधिकारके अनुसार ही पूजा करनेकी बातपर जोर देंगे! सबसे बड़े हितैषी तो वे होंगे जो उनके न माननेपर सत्याग्रह कर उन्हें मनवानेकी चेष्टा करेंगे और उसके परिणामस्वरूप स्वयं जेलके सीखचोंसे जूझना पसंद करेंगे!

---

१ गुरुपत्नी तु युवतीर्नाभिवाद्येह पादयोः। पूर्णविंशतिवर्षेण गुणदोषौ विजानता॥ (शिष्यके लिए गुरुपत्नीके चरण छूनेका केवल उस दिन विधान है जब कि वह विदेशसे लौट आया हो) २. अभ्यञ्जनं स्नापनञ्च गात्रोत्सादनमेव च। गुरुपत्न्या न कार्याणि केशानाञ्च प्रसाधनम्। (मनुस्मृति २।२११। (अर्थात् गुरुपत्नीके देहमें तेल आदि लगाना, नहवाना, उबटन लगाना, बाल गूँथना आदि कार्य शिष्य न करे।)

अधिकारीभेदसे पूजाभेदका दूसरा उदाहरण

शालग्रामकी पूजा ईश्वरोपासनाका एक अंग है। शास्त्रोंने केवल उपनीत ब्राह्मणोंको उनके स्पर्शसहित पूजाका अधिकार दिया है तथा क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र एवं ब्राह्मणी आदिको छूनेका स्पष्ट निषेध किया है[1]। बतलाया गया है कि स्त्री आदिके स्पर्शसे देवताको वज्र स्पर्शसे भी अधिक चोट पहुँचती है[2]। वे दूरसे उनकी पूजा कर सकते हैं। उपासनाके इस नियमको सृष्टिसे लेकर आजतक सभी आस्तिक जनता मानती आ रही है। क्षत्रिय आदिमेंसे एक भी जानकार कभी यह आग्रह करते नहीं देखा गया कि 'मुझे तो शालग्रामको छूकर ही पूजा करने दो'! बल्कि इस निषेधाज्ञासे अपरिचित कोई व्यक्ति यदि शालग्राम छूनेको तैयार हो और उसे शास्त्रका निषेध सुना दिया जाय तो वह तुरन्त पीछे हट जाता है। उसकी मनःस्थिति उस समय ठीक उस तरहकी हो जाती है जिस तरह बिजलीका तार छू जानेसे भयभीत किसी व्यक्तिकी होती है। ऐसा होता क्यों है? कारण यह है कि ईश्वरका प्रत्येक उपासक जानता है कि उपासनाकी पद्धतिसे विरुद्ध चलकर ईश्वरको प्रसन्न करना तो दूर रहा उलटे नरकका दरवाजा खटखटाना पड़ता है। वह जानता है कि शास्त्र ईश्वरकी आज्ञा है और उनकी आज्ञाका

---

१. शालग्रामशिलां वापि चक्राङ्कितशिलामपि।
ब्राह्मणः पूजयेन्नित्यं क्षत्रियादिर्न पूजयेत्॥
(विष्णु धर्म०)

२. शालग्रामं न स्पृशेत्तु हीनवर्णो वसुंधरे।
स्त्रीशूद्रकरसंस्पर्शो वज्रस्पर्शाधिको मतः॥
मोहाद्यः संस्पृशेच्छूद्रो योषिद्वापि कदाचन।
स पतेत् नरके घोरे यावदाभूतसंप्लवम्॥
(वाराह०)

[stamp]

पालन करना ही सबसे बड़ी पूजा है[1]। किसी पूज्यकी आज्ञाका उल्लंघन कर उन्हें धूप-दीप दिखाना उनकी पूजा नहीं, उन्हें चिढ़ाना है !

दृष्टांत और दार्ष्टांतका संगमन

अब देखना यह है कि हिन्दू जनतामें शालग्राम शिलाकी पूजाके सम्बन्धकी यह पवित्र मनःस्थिति सृष्टिसे लेकर आजतक एक रुपमें कैसे बनी हुई है। सीधी बात यह है कि इसके विरुद्ध आजतक कोई प्रचार खड़ा न किया गया। सौभाग्यसे दूसरी शिक्षा-दीक्षामें पगे किसी महापुरुषकी दृष्टि इधर न गयी। यदि दृष्टि पड़ती तो सम्भव था कि शास्त्रकी इस निषेधाज्ञामें उन्हें विषमता और कठोरता ही दीखती। और उनके उदार हृदयमें एक ओर तो क्षत्रिय, वैश्य आदिके लिए दयाका संचार हो जाता तो दूसरी ओर शास्त्रके प्रति विद्वेषकी आग धधक उठती। और तब वे इस प्रचारपर तुल ही जाते कि 'यह ब्राह्मणोंकी नीचता है कि स्वयं तो शालग्रामका स्पर्श करें और दूसरोंको उनके स्पर्शसे वंचित रखें। क्या ईश्वर उनके खरीदे हुए हैं ? उनकी पूजाका हक जैसे ब्राह्मणोंको है वैसे क्षत्रिय आदिको भी ? ईश्वर जब विश्वके नाथ हैं तब प्रत्येक व्यक्तिको उनके पूजनका समान अधिकार है ? क्षत्रिय आदिके छू लेनेसे उस विश्वके नाथका भला क्या बिगड़ेगा ? छूआछूतकी सारी बातें पोंगाशाही है—रुढ़िवादिता है ?'

उस व्यक्तिका यह प्रचार कहीं महापुरुषताकी देन मान लिया गया होता और रेडियो, सिनेमा, अखबार और प्लेटफार्म उसके विचारके साथ-साथ उसकी महापुरुषताका भी प्रचार करने लग जाते तो बहुत संभव है कि २०—२५ वर्षोंमें ही क्षत्रिय, वैश्य आदिका एक बहुत बड़ा जत्था ब्राह्मणोंके विरुद्ध खड़ा हो जाता। फिर तो मंदिरमें घुसकर शाल-

---

१ श्रुतिस्मृती ममैवाज्ञे यस्ते उल्लंध्य वर्तते।
शास्त्रभंगी मम द्वेषी न मे भक्तो न च प्रियः॥

ग्राम शिलाके स्पर्श करनेका उग्र आन्दोलन आप ही उठ खड़ा होता। इसी तरह आज हरिजन मंदिर प्रवेशकी जो स्थिति उत्पन्न है, ठीक वही परिस्थिति उस समय भी उत्पन्न हो जाती; और जो-जो नारे आज लगाये जा रहे हैं वे उस समय भी लगाये जाते। कहा जाता—"ब्राह्मणोंका नाश हो" "धर्मका नाश हो" "अरे हिन्दुओ चेतो तो, मुखमें कालिख पोतो तो," "मंदिरमें क्यों जाना है, रुढ़िवाद मिटाना है," 'मानव-मानव एक समान'!

यदि उस समयकी सरकार उन उभारने वालोंकी ही सरकार होती तथा वह 'अस्पृश्यता निवारण' कानून पासकर शालग्राम स्पर्शके लिए आन्दोलनकारियोंको पुलिसकी सहायता देती तो स्पर्शके लिये मना करने वालोंकी संख्या उतनी ही नगण्य होती जितनी आज मन्दिर प्रवेश प्रतिरोधियोंकी है? और तब उन बेचारोंको राज्यसत्ताका कठोर कारावासका दण्ड तो मिलता ही साथ-ही-साथ मिलती जनताकी उपेक्षा और घृणा! बेचारे सत्याग्रह करके भी न तो शालग्रामको आन्दोलनकारियोंसे बचा पाते और न आन्दोलनकारियोंको ही उनके पापसे बचा पाते! इस तरह तब सत्यकी हत्या हो जाती। और सत्यकी हत्याके माने है कि राज कर्मचारी, जनता तथा आन्दोलनकारियोंकी हत्या, उनके अनजाने ही, हो जाती!

प्रश्न है कि इस स्थितिमें शालग्राम स्पर्शके लिए आन्दोलन करने वाले उन भाइयोंके सच्चे हितैषी कौन होते? क्या वे लोग जो स्पर्शके लिये उन्हें उभारते और सहायता पहुँचाते; या मुट्ठीभर वे निरीह ब्राह्मण जो उन्हींके कल्याणके लिए लांछन और लात-जूता सहकर तथा जेल जाकर भी उन्हें मना करनेसे बाज नहीं आते? इसका उत्तर आज हिन्दूका एक बच्चा भी दे सकता है। क्योंकि उसके भीतर शालग्राम स्पर्श सम्बन्धी शास्त्रीय संस्कार अभी सुरक्षित है, विरुद्ध प्रचारसे बिगाड़ा न जा सका है। आजके हरिजन मन्दिर प्रवेश सम्बन्धी आन्दोलनके लिए भी ठीक

यही बात लागू होती है। अंग्रेजी शासनने अपनी स्वार्थ सिद्धिके लिए हिन्दू-मुसलमान, ब्राह्मण-अब्राह्मण और सवर्ण--असवर्णके झगड़े गढ़े। मुसलमानोंमें कम ऐसे थे जो इस चक्करमें न पड़े। किन्तु हमारे अन्त्यज भाइयोंने अद्भुत समझदारी दिखलायी। कुछ अपवादको छोड़कर सभी अन्त्यज भाई अपने पथपर दृढ़तासे डटे रहे। मानो प्रलोभनकी आंच ही उनपर न पड़ी। इसके बाद महात्मा गांधीका युग आया। एक तो उनका हृदय सीमातीत उदार एवं दयार्द्र था। दूसरे, हिन्दूधर्मके सांगोपांग अध्ययनका उन्हें अवसर न मिला था। तीसरे, विदेशके वे उस वातावरणमें पढ़े-पले थे जहाँकी उपासना एक ही रास्तेसे चलती है, जहाँ अधिकारी भेदसे उपासना भेदकी वैज्ञानिक व्यवस्थाकी अभी खोज नहीं हो पायी है। उसका परिणाम यह हुआ कि हरिजन बन्धुओंके मन्दिरमें न जाने देनेकी शास्त्रीय आज्ञामें उन्हें विषमता और कठोरताका विष दीख पड़ा और झटसे उन्होंने हरिजन मन्दिर प्रवेशके आन्दोलनका सूत्रपात कर दिया। इधर सिनेमाओं, अखबारों और प्लेटफार्मोंने जनताके मनपर उनके विचारोंका गहरा रंग उलेड़ना प्रारम्भ कर दिया। बादमें तो गाँधीवादी सरकार ही कायम हो गयी। सरकारको इस आन्दोलनसे अपने वोटोंका स्वार्थ भी सधते दीख पड़ा। इसलिए उसने महात्मा गांधीके विचारोंको जनतापर पुलिसके बलपर भी लादना प्रारंभ कर दिया। इसका नतीजा यह हुआ कि अंग्रेजोंकी वह गाड़ी जो सौ-सवा सौ वर्षोंमें कुछ ही खिसकायी जा सकी थी, बीस-पचीस बर्षोंमें ही मीलोंका फासला तयकर एक तरहसे लक्ष्य तक पहुँच ही गयी। काशी आदिके जो कुछ मंदिर बच गये हैं, उनपर भी आन्दोलन जारी है और पुलिसकी सहायतासे एक-एक कर उनकी मर्यादा मिटायी जा रही है।

अशास्त्रीय उदारता भी पाप

इस स्थितिमें यदि मैं प्रश्न उठाऊं कि "मंदिर प्रवेशके लिए आन्दोलन करने वाले भाइयोंके सच्चे हितैषी कौन हैं, क्या वे लोग जो

मंदिरमें जानेके लिए सहायता पहुँचाते हैं, या मुट्ठीभर वे लोग जो शास्त्रके आधारपर उन्हें मना करते हैं, तो निश्चित है कि अधिकांश जनता प्रश्न सुनकर ही चिढ़ उठेगी, और मुझपर ही प्रश्नोंका बौछार शुरु कर देगी—'गांधी जैसे महापुरुष उनके हितैषी नहीं, तो तुम्हारे जैसे उनके हितैषी हैं क्या ? तुम तो उनके दुश्मन हो ? मंदिर तकमें जानेसे रोकते हो, फिर भी उनके हितैषी बननेका ढोंग रचते हो ? महान गाँधीकी बुद्धि भी महान थी। अंग्रेजोंको भी उनका लोहा मानना पड़ा। फिर शास्त्रका तत्त्व वे समझ सकते थे कि तुम ? बड़े शास्त्री बने फिरते हो और शास्त्रार्थके लिए शोरगुल मचाया करते हो ? बापूने तो अनशनकर शास्त्रार्थकी आवश्यकता बहुत पहले ही समाप्त कर दी है ? डेढ़—दो वर्ष हुए बाबा राघव दासने अपने वक्तव्यमें लिखा था—"दुःखकी बात तो यह है कि उत्तर भारतके कुछ जिम्मेदार पुरुष देव दर्शनके निमित्त शास्त्रार्थ करनेको श्रीवनोबा जीको निमन्त्रित करते हैं। यरवदा जेलमें शास्त्रार्थ हुआ। जिसमें बापूने प्राणोंकी बाजी लगायी। इसके बादभी शास्त्रार्थ करना बाकी रह जाता है क्या ?"

बाबाने स्पष्ट शब्दोंमें अपना यह आशय व्यक्तकर दिया है कि मंदिर प्रवेशके सम्बन्धमें शास्त्र क्या कहता है इसपर अब विचार करनेकी कोई आवश्यकता नहीं रह गयी। और इसका उन्होंने एक ही कारण उपस्थित किया कि गांधी जीने अनशनकर प्रवेश पक्षको सुस्थिर कर दिया। अर्थात् शास्त्रसे अधिक प्रामाणिक है—महात्माजीका अनशन, शास्त्र और महात्मा जी दोनों जहाँ टकरायें वहाँ शास्त्रको धता बता देना चाहिए !

महात्माजीके दूसरे भक्त श्री वियोगी हरिने "वे दो प्रसंग" शीर्षक संस्मरण सप्ताहिक 'हिन्दूस्तान' (२ अक्टूबर १९५५) में प्रकाशित कराया है। इसमें उन्होंने महात्मा जीके मुखसे ही कहलाया है कि वे अपने मन्तव्यके आगे शास्त्रको कोई आदर नहीं देते थे। प्रसंग उस समयका

दिया गया है जब कि महात्माजी अस्पृश्यता निवारणके लिए भारतका दौरा कर रहे थे।

जाजपुरके कुछ विद्वान अस्पृश्यताका शास्त्रीय आधार प्रमाणित करनेके लिए उनके पास गये। गाँधी जीने हँसीमें परास्त होना स्वीकार कर लिया। बाद दृढ़ताके स्वरमें कहा—"मैं आपकी प्रसन्नताके लिए परास्त तो हो जाता हूँ, पर इस बातको मैं अपने अंतिम समय तक कहता रहूंगा कि अस्पृश्यता एक पाप है, हिन्दु धर्मपर एक कलंक है। मेरे इस दृढ़ विश्वासको आपका कोई भी शास्त्र मेरे हृदयसे निकाल नहीं सकता।"

उपर्युक्त पंक्तियोंसे व्यक्त होता है कि महात्मा जीने शास्त्रीय अस्पृश्यताको केवल इसलिए अस्वीकार कर दिया कि इसमें उन्हें विषमता और कठोरता दीख पड़ी, और उनका सीमातीत उदार और दयार्द्र हृदय इस अन्याय और कलंकको समाजसे धो बहानेके लिए तुल गया। यहाँ विचारणीय यह है कि शास्त्र क्या सचमुच अनुदार और अन्यायी है? शास्त्रको जब संसारके हितके लिए ईश्वर द्वारा आविर्भावित परिवर्तन शून्य विधान माना जाता है तब यह प्रश्न ईश्वरपर ही लद जाता है है कि ईश्वर क्या सचमुच इतना अनुदार और निष्ठुर है कि उसने अस्पृश्यताका लज्जास्पद विधान दुनियांको दे डाला? कुछ और गहराईमें उतरा जाय तो यही सवाल सृष्टिसे लेकर आजतक जितने ऋषि, मुनि एवं पहुँचे हुए संत हुए हैं उनपर भी लागू होता दीखता है। प्रश्न होता है कि आजतक जितने ऋषि, मुनि एवं पहुँचे हुए संत हुए क्या उनमें भी वही अनुदारता और असहृदयता उसी रूपसे घर किये बैठी थी, जिससे कि उन्होंने भी शास्त्रोंके स्वरमें ही अपने स्वर मिलाये?

बात यह है कि कर्माकर्मका निर्णय कोई सरल काम नहीं है[1]। जहाँ कर्म अकर्म बनने लगता है और अकर्म कर्मके चोलेमें आता है, वहाँ

१. किं कर्म किमकर्मेति कवयोऽप्यत्र मोहिताः। (गी० ४।१६)

यदि सावधानी न बरती गयी तो, मानवीय बुद्धि धोखा खा जाती है। उदारता, सहृदयता, और प्रेमप्रवणता स्वर्गीय रश्मियाँ हैं। इनके विना मानवता नहीं जिलायी जा सकती। किन्तु ये ही कर्म जब अवस्था-विशेष और अधिकारी विशेषसे अकर्मका चोला धारण कर लेते हैं तब इनके पहचाननेमें कभी-कभी महान बुद्धि भी धोखा खा जाती है। इसी सतर्कताकी शिक्षाके लिए नरावतार अर्जुनने विषादका अभिनय किया; जिसकी भूमिकापर गीताकी अवतरणा सम्भव हुई।

दोनों ओरकी सेनाएँ शस्त्र चलानेको तैयार ही थीं कि अर्जुनकी इच्छा विपक्षी सेनाके निरीक्षणकी हुई। भगवान्‌ने दोनों सेनाओंके बीच रथ खड़ा कर दिया। विपक्षियोंको देखते ही अर्जुन काँप गये; डरसे नहीं, उदारतासे! जैसे ही उनकी दृष्टिमें यह बात आयी कि—"जिन्हें मारकर हम राज्य प्राप्त करने जा रहे हैं वे तो हमारे गुरु, पितामह, चाचा, मामा, भाई, मित्र, पुत्र, पौत्र एवं सगे-सम्बन्धी हैं, वैसे ही उनके भीतरकी प्रेमप्रवणता, उदारता एवं सहृदयता जाग उठी और सीमा लाँघने लगी! उस समय वे इतने उदार बन गये कि शास्त्र वचनोंमें उन्हें अनुदारता और निष्कृपता साफ दिखलायी पड़ने लगी। भला गुरु, पितामह, आदिके खूनसे हाथ रँगना भी कोई धर्म है? यह तो घोर बर्बरता है! घृणास्पद जंगलीपन एवं मानवताकी निर्मम हत्या है! यदि शास्त्र क्षत्रियोंको ऐसा कर्म करनेका आदेश देता है तो वह मान्य नहीं हो सकता! यह तो समाजके लिए बहुत बड़ा कलंक है!

इस तरह अर्जुन उदारता और दयालुताके प्रवाहमें बहते ही चले गये। वे परख न सके कि उस अवस्थामें उनकी उदारता और दयार्द्रता कायरताके रूपमें बदलती चली जा रही है। उन्होंने बड़ी दृढ़तासे भगवान्‌से कहा—"मैं विजय, राज्य, भोग कुछ भी नहीं चाहता। दुर्योधन आदि भले ही आततायी हैं, किन्तु हैं तो मेरे भाई ही! उनके

क
२८९

खूनसे अपने हाथ रँगनेका पाप मैं नहीं कर सकता। वे भले ही मुझे मार डालें पर मैं तो उनपर हाथ भी न उठाऊँगा। रह गयी पेटकी आगकी बात, सो भीख जैसे निंद्य अन्नसे भी बुझायी जा सकेगी! और अन्तमें उन्होंने साफ कह दिया कि मैं युद्ध करूँगा ही नहीं* ।"

किन्तु भगवानने अर्जुनकी मानवता सम्बन्धी इन बातोंको स्वीकार न किया। उन्होंने उनकी समझको अज्ञान कहा, उनके आचरणको श्रेष्ठ पुरुषोंके आचरणके विरुद्ध कहा तथा अकीर्तिकर एवं परलोक विरुद्ध ठहराया[1]। उनकी उदारताको नपुंसकता[2], सहृदयताको हृदयकी क्षुद्र दुर्बलता[3] तथा उनकी मान्यताको पाण्डित्याभास माना।

यदि सामान्य दृष्टिसे देखा जाय तो अर्जुनमें मानवताके सभी उदात्त भाव पूर्ण रूपसे उद्बुद्ध दिखायी देते हैं। यदि कोई व्यक्ति अपने भाईके प्रति, जिसने कि उसके हिस्सेका एक एक तृण हथिया लिया है, अपनेमें प्रतिशोधकी तनिक भी भावना उठने नहीं देता तथा भीख माँगकर गुजर कर लेना पसन्द करता है, मारनेके लिए उतारू होनेपर भी उसका कोई प्रतिकार नहीं करता, तो वह निश्चित ही महापुरुष है। उसकी वह आदर्श

---

* न योत्स्ये (गी०)।

१. कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितम्।
अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन॥

भगवान्ने कहा—अर्जुन, इस विषम परिस्थितिमें तुमको यह अज्ञान कैसे हो गया? तुम्हारी समझ श्रेष्ठ पुरुषोंके आचरणके विरुद्ध, स्वर्गको न देनेवाली तथा अपयश करनेवाली है। (गी० २।२)

२. क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ। (गी० २।३)।

३. क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं (गी० २। ३)

४. प्रज्ञावादांश्च भाषसे (गी० २।११)।

उदारता और सहृदयता निश्चित ही पूजनीय एवं अनुकरणीय है। आखिर अर्जुन महामानवताके इसी राजपथपर ही तो अग्रसर हो रहे थे? फिर भगवानने उन्हें रोका क्यों? उन उदारता आदि उदात्त भावोंको कायरता और हृदयकी दुर्बलता कैसे कह डाला? उनकी आदरणीय समझको अज्ञान एवं उनकी अनुकरणीय आचरणको श्रेष्ठ पुरुषोंके आचरणके विरुद्ध, अकीर्तिकर एवं परलोकका परिपंथी कैसे ठहराया?

इन प्रश्नोंका गीताने सूत्ररूपमें इतना ही उत्तर दिया—"अधिकार भेदसे पूजा भेदकी यथार्थताको ठुकराना पाप है; तथा अपने अधिकारानुसार जातिप्राप्त विगुण भी कर्तव्यमें चिपटे रहना पुण्य है—ईश्वरकी सर्वश्रेष्ठ पूजा है।" समस्त गीता इसी सूत्रकी व्याख्या है। दूसरे शब्दोंमें कहा जाय तो समस्त हिन्दू शास्त्र इसी सूत्रको प्रस्तुत कर और इसीकी सांगोपांग व्याख्या कर समाप्त हो जाते हैं। भगवान्ने कहा—"अर्जुन, तूँने अपने सगे-सम्बन्धियोंके प्रति जो प्रेमप्रवणता, उदारता, और दयार्द्रता दिखलायी है, ये भाव सचमुच महामानवताके भाव हैं, किन्तु ये ब्राह्मण, वैश्य, शूद्र और अन्त्यजके लिए ही उदात्त कर्म हैं। क्षत्रियके लिए तो ये अत्यन्त ही अकर्म हैं—भयानक पाप हैं। ये तो तुम्हें नरकमें घसीट ले जायेंगे! याद रखो, तुम क्षत्रिय हो; और क्षत्रियके लिए धर्मयुक्त युद्धसे बढ़कर और कोई धर्म नहीं है—"धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रेयोऽन्यत् क्षत्रियस्य न विद्यते।" (गीता २।३१४)। भाई-बन्धुओंके लिए अपना हक छोड़ भिक्षावृत्ति ग्रहण करना सचमुच अत्यन्त उत्तम कर्म है और उसकी अपेक्षा अपने हकके लिए अपने भाइयोंके खूनसे हाथ रँगना अत्यन्त सदोष कर्म है। यह बिलकुल ठीक है, किन्तु याद रखो, तुम्हारी जातिका कर्म होनेके नाते भैक्ष्यादि जैसा उदात्त कर्म भी तुम्हारे लिए पातक है—"सहजं कर्म कौन्तेय सदोषमपि न त्यजेत्।" (गीता १८।४८)। "श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्" (गीता ३।३५, १८।४७)। उदारताके चक्करमें पड़कर दूसरी जातिके धर्मका मत अपनाओ। इससे

तो अच्छा है कि तुम अपने 'सदोष' कर्मपर ही मर मिटो—"स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः।" (गीता ३।३५)।

उपर्युक्त पंक्तियोंसे स्पष्ट है कि शास्त्रविरहित उदारता, दयालुता, प्रेमप्रवणता, दृढ़ता आदि उदात्त कर्म भी अकर्म हो जाते हैं और शास्त्रविहित 'भाइयोंका खून बहाना' जैसा गर्हित अकर्म भी कर्म हो जाता है। ऐसी स्थितिमें शास्त्रविहित 'अस्पृश्यता' धर्म कैसे नहीं हो सकती? पाश्चात्योंकी अस्पृश्यता और वस्तु है और शास्त्रीय अस्पृश्यता और! उनकी अस्पृश्यता अकर्म है पर शास्त्रीय अस्पृश्यता कर्म! इस विवेकके विना भ्रम होना सम्भव है। शास्त्रोंमें अस्पृश्यताका मूल आधार बचाव रखा है; जब कि पाश्चात्योंकी अस्पृश्यताके मूलमें घोर घृणाका भाव है। शास्त्रोंने रजःस्वला अवस्थामें माता तथा बहनोंसे न छुआनेका आदेश दिया है। इसी तरह आशौचावस्थामें गुरु एवं पुरोहित तथा प्रायश्चित्तावस्थामें ब्राह्मणसे भी स्पर्श निषिद्ध है। ऐसी स्थितिमें यह तो कहा नहीं जा सकता कि शास्त्र उतने दिनोंतक माताओं, बहनों, गुरुओं, एवं पुरोहितोंसे घृणा करनेका आदेश दे रहे हैं! बिजलीका तार अस्पृश्य है; और परायी स्त्री भी अस्पृश्य है। ऐसी अस्पृश्यता सबको माननी पड़ती है। किन्तु स्पष्ट है कि किसी व्यक्तिके हृदयमें बिजली और परायी स्त्रीके प्रति तनिक भी घृणाका भाव नहीं रहता। इसी तरह शास्त्रीय अस्पृश्यताका मूल आधार हृदयकी संकुचितता या घृणा बिलकुल नहीं है। अतः अस्पृश्यता निवारणका आन्दोलन ठीक नहीं। यह प्रयास तो ठीक वैसे ही हास्यास्पद है जैसे कोई व्यक्ति उदारता और हृदय विशालताके चक्करमें पड़कर परायी पत्नीकी अस्पृश्यताको घृणामूलक मान उसे मिटानेका आन्दोलन करे।

अर्जुन भारतीय संस्कृतिकी छायामें सर्वात्मना शिक्षित हुए थे। इतने पर भी उदारता और सहृदयताने जब उन्हें चकमा दे दिया तो महात्मा गाँधीके लिए यह असंभव कैसे हो सकता है? जिस तरह विशाल

हृदयतावश अर्जुनने धर्मयुद्धको अधर्म समझ लिया था; उसी तरह शास्त्रीय अस्पृश्यता महात्मांजीको कलंकके रुपमें दीख गयी। किन्तु अर्जुनका वह व्यामोह आन्दोलनका रूप लेकर दुनियाको घेर न सका। क्योंकि भगवानने तुरन्त उसकी दवा कर दी। अर्जुन और महात्मा गाँधीका रास्ता यहींसे अलग हो जाता है। यदि भगवान न होते और अर्जुन अपने विचारका प्रचार कर बैठते तो निश्चय था कि बहुमत उनके साथ हो जाता। जो विषय अर्जुनके लिए भी दुरवबोध था और जो युद्धके बाद धर्मराज युधिष्ठिरके लिए भी दुरवबोध-सा बना रहा उसके संबधमें साधारण जनताको व्यामोहित होते कितनी देर लगती ? जनता समझती 'सचमुच भाई-भाईका युद्ध पाप है। युधिष्ठिर तो बहुत ही अनुदार हैं जो राज्यके लिए भाईके खून बहानेको तैयार हो गये ? सच्चे धर्मराज तो अर्जुन हैं; जो अपना सब कुछ त्याग भीख मांगनेके लिए तैयार हैं ?' और इसका अर्थ यह होता कि उस समयका घटना-क्रम बदल जाता और आज हमारे सामने गीता न रह व्यामोहकी विजयका काला इतिहास रहता !

प्रवेश प्रतिरोध भावना अभी विचारणीय है, व्यवहरणीय नहीं

माहात्मा जीका मैं भी आदर करता हूँ; उन्हें संत मानता हूँ। किन्तु किसीके प्रति अन्ध विश्वास अनुचित है। यदि शास्त्रका कोई पहलू समझके दायरेसे दूर हो तो किसी व्यक्तिका यह कर्तव्य न होना चाहिए कि वह अपनी समझको दाद दे शास्त्रका तिरस्कार कर बैठे और उसकी जगहपर अपनी ही समझ लाद दे। क्योकि ईश्वरने जैसे रूपके विषयमें आँखको प्रमाणता दी एवं शब्दादिके विषयमें कर्णादिको प्रमाणता दी है, वैसे ही मानव जीवनके अन्तरित तत्वोंके लिए वेदको स्वतः प्रमाणता दी है। जैसे आँख न रहने पर अन्य ज्ञानेन्द्रियोंसे रूपका ग्रहण सम्भव नहीं है; उसी तरह वेद न मानने पर धर्माधर्मका निर्णय असम्भव है। कोरे तर्ककी लाठी लेकर लक्ष्य तक नहीं पहुँचा जा सकता। यही

कारण है कि अर्जुनको समझाते समय भगवानने यह कभी नहीं कहा कि मैं कहता हूँ इस लिए युद्ध करो। उन्होंने तो स्पष्ट शब्दोंमें बतला दिया कि—'इस समय तुम्हारे सामने कर्तव्याकर्तव्यका जो बखेड़ा खड़ा है उसके लिए तुम एकमात्र शास्त्रकी शरण लो—"तस्माच्छास्त्रं प्रमाणन्ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ।" (गीता १६।२४),। अतः यह कहना अन्ध विश्वास है कि "बापूने प्राणोंकी बाजी लगायी अतः अब शास्त्रार्थ करनेकी कोई गुंजाईस ही नहीं रह गयी।" सृष्टिसे लेकर अंग्रेजोंके आनेके पहले तक जितने ऋषि-मुनि एवं पहुँचे हुए संत हुए हैं सबने पाण्डवों और कौरवोंको ऐतिहासिक व्यक्ति माना है। किन्तु महात्मा गाँधीने अनासक्ति योगमें उन्हें काल्पनिक मात्र माना है! तब यह क्या उचित होगा कि हम लोग भी उनकी ऐतिहासिकता मानना छोड़; केवल इसलिए कि बापूने ऐसा माना है ? इसी तरह सभी पहुँचे हुए व्यक्तियोंने वर्ण व्यवस्थाको ईश्वरीय एवं जन्मना माना है किन्तु गाँधी जीने पहले तो मान लिया और पीछे आकर अस्वीकार कर दिया तो क्या सब संतों और शास्त्रोंको ठुकरा दिया जाय, केवल इसलिए कि बापूने ऐसा माना है ? योगियोंके युक्त और युञ्जान इन दो भेदोंकी तरह संतोंके दो भेद होटे हैं—(१) पहुँचते हुए और (२) पहुँचनेका प्रयास करते हुए। आचार्य शंकर, एकनाथ, तुलसीदास रैदास आदि संतोंमेंसे किसी संतको एक पलड़ेपर बैठाया जाय और दूसरे पलड़ेपर महात्मा गांधीको, तो यह स्पष्ट है कि प्राचीन संतोंका पलड़ा भारी पड़ेगा। इसलिए कि उन लोगोंमेंसे प्रत्येकने समग्र ईश्वर तत्वका साक्षात्कार कर लिया था; जब कि महात्माजी उसके लिए प्रयासभर कर रहे थे। ऐसी स्थितिमें जहाँ दोनोंके विचार टकरायें वहाँ प्राचीन संतोंको ही बात माननी चाहिए। इसलिए कि उनका विचार साक्षात्कृत है—और शास्त्र सम्मत है। एकने कलकत्ता जाकर प्रत्यक्ष देख लिया और दूसरेने भूगोल पढ़कर उसका ज्ञान प्राप्त किया। तो दोनोंके मस्तिष्कमें कलकत्तेकी रूपरेखा अंकित

होगी। यदि दोनोंकी रेखाओंमें मतभेद पड़ जाय तो किसकी रूपरेखा प्रामाणिक और ग्राह्य होगी? सृष्टिसे लेकर आजतक जितने पहुँचे हुए सन्त हुए, किसीने अस्पृश्यता एवं अन्त्यज मन्दिर प्रतिरोधको कलंक न कह योनिज कर्म कहा। किन्तु महात्मा गाँधी जीने कलंक माना तो किसका कथन प्रामाणिक और ग्राह्यहोगा? मनुष्योंसे भूल होती है। महात्माजी भी इसका अपवाद नहीं हो सकते। इसलिए किसीपर अंधविश्वास कर लेना अनुचित है। यही कारण है कि वेदने प्रत्येक नेता या शिक्षकको आदेश दिया है कि--ऐसा ऐलान कर दो कि कोई तुम्हारे आचरणका अंधानुकरण न करे—

'यान्यस्माकं सुचिरितानि तानि त्वयोपास्यानि नो इतराणि'

दयार्द्रता और उदारता यदि शास्त्र विरहित ली जाय तो उसकी कोई इयत्ता तो रहेगी नहीं। किसीको उदारतावश 'अस्पृश्यता' एवं 'मन्दिर प्रवेश प्रतिरोध कलंक दीखता है तो दूसरे सहृदयको उसी उदारतावश कन्याको दूसरे घरमें बसानेमें भी विषमता और स्त्रीजाति के प्रति होता हुआ अत्याचार दीख पड़ेगा। यदि वह इस प्रश्नको लेकर हमपर हावी हो जाय कि अपनी ही दुहिता (दूरे + हिता) से दुराव क्यों? पुत्रकी तरह उसे घरमें न रखकर घरसे बाहर क्यों निकाल दिया जाता है? बहनसे हिन्दू विवाह नहीं करते। मुसलमान भी दूध बराते हैं। आखिर दूध भी क्यों बराया जाय? यह तो रुढ़िवादिता है? इन प्रश्नोंका कोरे तर्कसे उत्तर देना अत्यन्त कठिन है। यदि कोई उदारपुरुष इस प्रश्नको लेकर हमपर हावी हो जाय तो यह प्रश्न हमारे लिए विचारणीय रहेगा, न कि व्यवहारणीय! यदि इस बातपर हम केवल इसलिए विश्वास करके कि यह एक महापुरुषका कथन है कन्याओंपर अत्याचार होना स्वीकार कर उनपर हमदर्दी प्रकट करने लगें और उन्हें उनके भाइयोंसे ही विवाह करनेके लिए बाध्य करें तो क्या यह देश, दुनिया, भाई तथा उन कन्याओंके पक्षमें हितकर होगा? जिस तरह यह ईश्वरीय

विधान विचारणीय हो जाता है उसी प्रकार अस्पृश्यता और मन्दिर प्रवेश प्रतिरोध विधान भी पहले विचारणीय ही ठहरता है। जिस तरह पुत्र और पुत्रियाँ एक ही पिताकी सन्तति हैं उसी प्रकार अग्रज और अन्त्यज भी एक ही ईश्वरके बड़े-छोटे भाई हैं। जिस तरह पुत्र और पुत्रियोंके लिए शास्त्रीय विधान भिन्न भिन्न है; उसी तरह अग्रज और अन्त्यजके लिए शास्त्रीय विधान पृथक-पृथक है। जिस प्रकार कन्याओंका अंध पक्षपात कर घरमें ही शादीकर बसाना अहितकर और अप्राकृतिक है; उसी प्रकार अग्रज और अन्त्यज भाइयोंकी एकरूपताका आन्दोलन अहितकर और शास्त्रीय विधानके प्रतिकूल है। और जिस तरह बालक बालिकाओंके कर्तव्य-वैषम्यमें घृणा या वैमनस्यका कोई भाव नहीं है उसी तरह अग्रज–अन्त्यजोंके कर्तव्य-वैषम्यमें वे भाव नहीं हैं। कर्तव्याकर्तव्यके सारे विभेद ईश्वरकृत हैं और वे ही कल्याणकारी हैं।

मंदिर प्रवेश हानिकर कैसे ?

यह स्पष्ट कह देना है कि शास्त्रोंमें एक भी वचन ऐसा नहीं मिलता जो अन्त्यज भाइयोंको मंदिरमें जानेका विधान करता हो। यहाँ यह देखना अपेक्षित है कि शास्त्रोंने आखिर अन्त्यज भाइयोंके लिए मन्दिर प्रवेशका प्रतिरोध लगाया ही क्यों ? बात यह है कि कर्मवादका सत्य सिद्धान्त ठुकराया नहीं जा सकता। दुनियाके लिए हिन्दूशास्त्रका यह सबसे मूल्यवान अवदान है। इसके बिना ईश्वर में जो वैषम्य और नैर्घृण्य रूप दोष आते हैं वे किसी प्रकार हटाये नहीं जा सकते। हाँ, तो ईश्वर व्यवस्थापक मात्र है। वे प्रत्येक प्राणीको उसके कर्मके अनुरूप ही या तो सुखी-सम्पन्न बनाते हैं या दुःखी-दरिद्र; या तो उसे पशु-पक्षी, चाण्डाल योनियोंमें जन्म देते हैं; या ब्राह्मण आदि योनियोंमें। श्रुतिने कहा है— तद्य इह रमणीयचरणा अभ्याशो ह यत्ते रमणीयां योनिमापद्येरन् ब्राह्मणयोनिं वा क्षत्रिययोनिं वा वैश्ययोनिं वाथ य इह कपूयचरणा अभ्याशो ह यत्ते कपूयां योनिमापद्येरन् श्वयोनिं वा सूकरयोनिं वा चाण्डालयोनिं वा।

(छा० उप० ५।१०।७)। अर्थात् जो शुभ आचरण वाले होते हैं वे शुभ योनि ब्राह्मणयोनि, क्षत्रिय योनि या वैश्ययोनिको (चन्द्रमण्डलसे पतनके बाद) प्राप्त करते हैं। और जिनका आचरण अशुभ होता है वे कुत्ता, सूअर, चाण्डाल आदि अशुभ योनियोंमें (नरकसे लौटनेके बाद) जन्म लेते हैं।

मान लीजिए कोई ब्राह्मण है, उसने ब्रह्महत्या कर डाली। अब वह पाप उसके सिरपर तबतक सवार रहेगा जबतक कि वह उसका प्रायश्चित्त नहीं कर लेता। और जबतक प्रायश्चित नहीं कर लेता तबतक परमार्थका पथ उसके लिए अवरुद्ध रहेगा। यह सार्वभौम नियम है। यदि बी० ए० का कोई छात्र किसी को लूट कर देता है तो किसी देशका शासन विधान उसे यह सुविधा नहीं दे सकता कि तुम एम० ए० कर डालो तथा नौकरी-चाकरी कर घर-गृहस्थी बसा लो तब बुढ़ापेके अंतिम क्षणोंमें तुम्हें फाँसी दी जायगी! शासन विधान तो उसके सब कार्योंको वहीं ठपकर सबसे पहले उसके पापका प्रायश्चित्त ही करवाता है। इसी तरह उस ब्रह्महत्यारे ब्राह्मणके लिए भी आवश्यक हो जाता है कि वह शास्त्रीय विधानसे प्रायश्चित्त कर डाले। किन्तु किसी कारण वश प्रायश्चित्त न कर मर जाय तो उसके प्रायश्चित्तका भार दयालु ईश्वर अपने ऊपर ले लेंगे। और तब सनातन शासन विधानके अनुसार नरकमें भोग भोगवाकर उसके पापके अधिक अंशोंका प्रायश्चित्त करवा देंगे। बादमें उसी ब्रह्महत्याके बचे हुए अंशोंसे, उसके कर्मके गौरव-लाघवके अनुरूप उस ब्राह्मणको या तो सूकर-कूकरमें जन्म देंगे या चांडाल, पुक्कस आदि योनिमें[1]।

---

१ (क) महारौरवभाग् भूत्वा खरः श्वा सूकरोऽथवा। चाण्डालो वा भवेत् प्रेत्य पुरुषो ब्रह्महत्यया। (स्कन्द पु०) (ख) श्व सूकर-खरोष्ट्रानां गोऽजाऽवि-मृगपक्षिणाम्। चाण्डालपुक्कसानाञ्च ब्रह्महा योनिमृच्छति॥ (मनुस्मृति १२। ५५)

यहाँ स्मरणीय है कि उस ब्राह्मणको इस बार जो चांडालका शरीर मिला यह उसके प्राक्तन पापके प्रायश्चित्त स्वरूप ही। अर्थात् पहले जन्ममें उससे की गयी ब्रह्महत्याका प्रायश्चित्त करवानेके लिए ईश्वरने उस ब्राह्मणको चांडालका यह शरीर दिया। अतः इस शरीरसे उस ब्राह्मणको वही कर्म करना चाहिए जो प्रायश्चित्त व्यवस्थाके प्रतिकूल न हो। प्रायश्चित्त दशामें मंदिर प्रवेश, प्रतिष्ठित लिंग एवं मूर्तिका स्पर्श और जनस्पर्श शास्त्रतः निषिद्ध है। इस स्थितिमें वस्तु स्थितिको ठीक न समझनेवाला कोई हितैषी प्रायश्चित्त योनिमें आये उस ब्राह्मणको यदि मंदिरमें घुसा दे, मूर्तिस्पर्श करा दे तथा उसके साथ अस्पृश्यताका भाव न रखे तो क्या वह उसका अकल्याण न कर बैठेगा? अथवा वह ब्राह्मण प्रायश्चित्तपर विश्वास न कर स्वयं मंदिरमें घुस जाय तो वह अपने आपको दोहरे प्रायश्चित्तके चक्करमें न डाल लेगा? और इसी शरीरसे अपने सुकर जातिगत कर्म करके जो परम पद पा सकता था उससे बेचारा वंचित न हो जायेगा? प्रत्येक देशका शासन विधान ऐसे कैदीको, जो जेलके कानूनकी अवहेलना करता है, दोहरे दंडका भागी बना ही देता है। इस स्थितिमें चाण्डाल योनिमें आये इस ब्राह्मणका तथा मंदिर प्रवेशके लिए उभारनेवालोंका सच्चा हितैषी तो वही समझा जायगा जो दोनोंको कर्तव्यका ज्ञान कराकर मंदिर प्रवेश और मूर्तिस्पर्शके आंदोलनसे रोके। और परम हितैषी तो वह होगा जो सत्याग्रहकर उनके लिए जेल जाकर भी उन्हें समझाये और उन्हें पथच्युत होनेसे रोके।

नारी पूजा और शालग्राम पूजामें जिस तरह अधिकारी भेदसे पूजाके प्रकारमें भेद अपेक्षित है उसी तरह मंदिरमें प्रतिष्ठित देवताओंकी पूजामें

अर्थात् कुत्ता, सूअर, गधा, ऊँट, गौ, बकरा, भेड़, मृग, पक्षी, चाण्डाल और पुक्कस आदि योनिमें ब्रह्महत्यारा (बचे हुए पापकी गुरुता और लघुताके अनुसार) जन्म लेता है।

अपने-अपने अधिकारके अनुसार प्राप्त प्रकार भेदका पालन अत्यंत आवश्यक है। अन्त्यज भाई एवं रजःस्वला आदिके लिए मंदिरसे दूर रहकर मंदिरके दर्शनकर उसका प्रणाम करना ही पूजा है[1]। मंदिर प्रवेश उनके लिए घोर पातक ठहरता है[2]; ठीक उसी तरह, जिस तरह कि क्षत्रिय आदिके लिए शालग्राम शिलाका स्पर्श करना तथा शिष्य आदिके लिए नारी पूजामें उसके पतिके सर्वांशका आचरण करना ! जिस तरह क्षत्रियके शालग्राम छू लेनेपर या हठी शिष्यके पूज्याके साथ ऋतुकालाभिगमन कर लेनेपर आँखोंसे दीख पड़नेवाली कोई हानि घटित नहीं होती उसी तरह हरिजन भाइयोंके मंदिर प्रवेशसे उत्पन्न हानि आँखोंका विषय नहीं है। शिष्यका पूज्याभिगमन पूज्य-पूजक दोको ही हानि पहुँचायेगा। किन्तु हरिजन मंदिर प्रवेश और विग्रह स्पर्श ये दोनों तो पूज्य (प्रतिष्ठित देवता), पूजक (हरिजन भाई), राष्ट्र तथा राष्ट्रनायकको भी तबाह कर डालेंगे[3]। अतः मंदिर प्रवेश या विग्रहस्पर्श उपासना नहीं, अपितु उपासनाके चोलेमें छिपा महापाप है—कर्ममें अकर्म है ! यही कारण है

---

१. अन्त्येषामपि सर्वेषां नराणां मुनिपुङ्गवाः।
पूजा देवालयं दृष्ट्वा प्रणामस्तस्य कीर्तिता ॥
(सूत सं० अध्याय ४।१६)

अन्त्येषामिति संकरजातीनां देवालयं दृष्ट्वा तस्य देवालयस्य प्रणाम एव पूजा। (तात्पर्यटीका)। अर्थात् समस्त अन्त्यजजन मंदिरके दर्शन कर उस मंदिरको ही प्रणाम करें, उनके लिए यही देवपूजा है।

२. इसी पुस्तकका 'स्पर्श प्रवेश प्रतिरोध वचन' शीर्षक प्रकरण देखें।

३. (क) असम्प्रोद्यार्चनं कुर्वन् राजानं राष्ट्रमञ्जसा।
देवतायतनं ग्रामं नाशयेन्नात्र संशयः ॥७५५॥
(ईश्वर संहिता अ० १६)

कि हरिजन बन्धुओंके जिम्मेदार एवं पूजन तत्त्वके मर्मज्ञ व्यक्तियोंने 'बनारस' (५ मार्च १६५४) में एक वक्तव्य छपाकर चेतावनी दी थी कि 'हरिजन भाइयोंके लिए मंदिर प्रवेश अत्यंत अहितकर है। विश्वविद्यालयके हरिजन मजदूर नेताओंने अभी-अभी एक वक्तव्य प्रकाशित कराया है। उसमें उन्होंने बतलाया है कि मन्दिर प्रवेश सम्बन्धी मौजूदा आन्दोलन धार्मिक भावनाओंसे सर्वथा दूर है तथा यह विशुद्ध राजनैतिक दाव पेंच है। 'सन्मार्गसे' उनका वक्तव्य उद्धृत कर दिया जाता है—"सर्वश्री मोतीसिंह सहायक मन्त्री मजदूर संघ तथा उपसभापति मेहतर संघ काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, जवाहर सिंह तथा हरदंगी प्रसाद यादव सदस्य कार्यकारिणी समिति काशी हिन्दू विश्वविद्यालय मजदूर संघ, सूरज सिंह कोषाध्यक्ष मजदूर संघ काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, सोमारू मंत्री तथा प्रधान कार्यकर्ता मेहतरसंघ काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, श्रीनेत सिंह सभापति मजदूर संघ काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, छोटेलाल मेहतर कर्मचारी काशी हिन्दूविश्वविद्यालय, कालिका, हलीमन देवी तथा इन्द्राणी देवीने निम्नलिखित संयुक्त वक्तव्य प्रकाशनार्थ भेजा है।"

"आजकल काशीमें हरिजन मंदिर प्रवेश सम्बन्धी बातों को लेकर एक

अर्थात् अन्त्यज आदिके स्पर्शसे जो देवबिंब अशुद्ध हो जाता है उसकी शुद्धिके लिए शास्त्रोक्त संप्रोक्षण कर्म करे। यदि संप्रोक्षण किये बिना ही पूजन कर दिया जाय तो उससे शासक, राष्ट्र, मंदिर तथा गाँवका नाश हो जाता है।

(ख) एवमाद्यद्भुते दृष्टे राज्ञो राष्ट्रस्य वै पुनः ॥ ३२ ॥
ग्रामस्यापि विनाशः स्यात्ततश्शान्तिं समाचरेत्।
(समूर्तार्चनाधिकरण ७३-३२-३३)

(ग)......न कुर्याच्चेत् कर्त्राराधकयोर्ग्रामस्य च महद् भयं राज्ञो राष्ट्रस्य च क्षोभश्च जायते। (विमानार्चन, पटल ७५)। (इन उदाहरणोंका विस्तृत विवरण अगले पृष्ठोंपर देखें।)

आन्दोलन खड़ा कर दिया गया है। वस्तुतः यह आन्दोलन धार्मिक भावनाओंसे सर्वथा दूर है। यह केवल राजनैतिक दाव-पेंच है जिसे अपनाकर कुछ नेता कहलानेवाले व्यक्ति क्षेत्रमें आगे आना चाहते हैं। हमारी यह धारणा है कि यदि हममें सच्ची धर्म भावना है तो हम बलात् मंदिर प्रवेशसे नहीं प्रत्युत अपनी आत्माको निर्मल बनाकर भगवानका साक्षात्कार कर सकते हैं उसे कोई रोक नहीं सकता है।"

"हम काशी हिन्दूविश्वविद्यालयके हरिजन मजदूर इस बातको स्पष्ट करते हैं कि हम इस राजनीतिसे बिलकुल अलग हैं। हमें मंदिर प्रवेशमें भाग लेनेकी कोई भावना नहीं है न हम ऐसा करना उचित समझते हैं। महामना स्वर्गीय पण्डित मदनमोहन मालवीय जीने हम लोगोंके उद्धारार्थ पहले ही मार्ग प्रदर्शन कर दिया है जिसपर चलना हम अपना पुनीत कर्तव्य समझते हैं। हमें तो अपने दैनिक जीवनमें उलझनोंसे ही अवकाश नहीं मिलता। हमें भोजन वस्त्रादिकी कठिनाइयाँ, दिन-दिन हमारे उन्नतिके मार्गमें बाधाएँ उत्पन्न कर रही हैं। यह प्रश्न अवश्य हमारे सामाजिक मानसिक कठिनाइयोंका विषम समस्या बना है। हमें कहाँ अवकाश कि हम व्यर्थके राजनैतिक प्रपंचमें, जिसमें कुछ भी कल्याण नहीं है, पड़ें। अतः हम इस वक्तव्य द्वारा स्पष्ट घोषित करते हैं कि हम मंदिर प्रवेश सम्बन्धी व्यर्थके प्रपंचसे सदा अलग हैं।"

'सन्मार्ग २८ दिसम्बर १९५५'

कई वृद्ध हरिजन भाइयोंसे मुझे बातचीत चलानेका अवसर मिला है। उनके सधे उत्तर सुनकर मुझे तो विस्मित होना पड़ा था। उत्तर क्या थे शास्त्रके निचोड़ थे। एक बुजुर्ग भंगी हरिजनने पाखानोंकी ओर हाथका इशारा करते हुए कहा था—"हमारे मंदिर तो ये हैं! इनकी सफाई ही हमारी पूजा है! भगवानका नाम और उनका बताया काम, ये ही हमारे कर्तव्य हैं!" दूसरे सज्जनने समाजको लक्ष्य कर कहा था—"हमारे मंदिर तो आप लोग हैं। आप लोगोंकी सेवा

ही हमारी पूजा है !" एक धनी हरिजन बंधुने निजी मंदिर बना रखा है। उनका कहना था --"मंदिरका दर्शनकर प्रणाम करना ही हमारी पूजा है। जब हम अपने बनवाये मंदिरमें भी नहीं घुसते तो विश्वनाथ जीके मंदिरमें कैसे घुसें ? अंग्रजी पढ़नेवाले नये छोकड़े धर्म-कर्म क्या जानें ? इसीलिये वे अनर्थ कर रहे हैं।" एक अन्त्यज वृद्ध बाबाने आकाशकी ओर हाथ जोड़कर भयभीत स्वरोंमें कहा था—"पता नहीं, किस पापका फल है कि मुझे यह योनि मिली! अब तो मंदिरमें घुसने जैसा भयानक पाप मैं तो नहीं कर सकता। यदि सरकार जबरन् घुसाना चाहेगी तो मैं जेलमें ही घुसना पसंद करूंगा; बंधनमें भी दम टूटना अंगीकार कर लूंगा !"

हरिजन भाइयोंके लिए हमारे हृदयमें दर्द है, उनके प्रति महान आत्मीयता है। यही कारण है कि चोटीके संत एवं विद्वान सब काम छोड़ कर उन्हें समझानेकी चिंतामें व्यस्त हैं। स्वयं जेल जाकर उन्हें पथच्युत होनेसे रोकते हैं ! सत्यका यह आग्रह दुनियाँके इतिहासमें अपनी मिसाल नहीं रखता। अपने भाइयोंके हितके लिए दूसरे भाई जेल जायँ और तरह-तरहके कष्ट झेलें यह सचमुच अपूर्व बात है[1]।

---

१. सन्त विनोबा एवं श्री वियोगीहरि आदिसे श्रीस्वामी करपात्री जीका पत्राचार हुआ था कि मन्दिरके संबंधमें मिलकर शास्त्रीय सिद्धान्त समझ लिया जाय। परन्तु इसका कोई फल न निकला। सन्तों एवं पण्डितोंने बहुत पहलेसे यह घोषणा कर रखी है कि यदि कोई यह प्रमाणित कर दे कि मन्दिर प्रवेश और बिंब स्पर्शसे हरिजन भाइयोंका एक पैसा भी पारमार्थिक लाभ हो तो हम लोग अपनी ओरसे सोलह आने छोड़नेको तैयार हैं।' गत वर्ष मैं श्री रामलखनजी वकील, एम० एल० ए० से लगातार कई दिनोंतक मिलता रहा। दुःख है कि समझौताका रास्ता तय होकर भी तय न हो सका !

दूसरा अध्याय

स्पर्श-प्रवेश प्रतिरोध वचन

शास्त्रोंमें अनेक ऐसे वचन मिलते हैं जिनसे यह सिद्ध होता है कि अन्त्यज भाइयोंका मंदिरमें जाना तथा बिम्ब स्पर्श करना हानिकर एवं निषिद्ध है। स्थानाभावसे यहाँ कुछ वचन उद्धृत किए जाते हैं।

स्पर्श प्रतिरोध

चाण्डालोदक्यादिभिश्च म्लेच्छैर्वा पुल्कसादिभिः।
देवविम्बे तु संस्पृष्टे चण्डालश्वपचादिभिः॥ ७४६॥
सम्प्रोक्षणं प्रकुर्वीत तत्तद्दोषप्रशान्तये।
दोषैरुपहतं ज्ञात्वा प्रासादप्रतिमादिकम्॥ ७५६॥
असम्प्रोक्ष्यार्चनं कुर्वन् राजानं राष्ट्रमञ्जसा।
देवतायतनं ग्रामं नाशयेन्नात्र संशयः॥ ७५७॥

(ईश्वर संहिता अ० १६)

अर्थात् चण्डाल, रजस्वला, म्लेच्छ, पुल्कस, नीच चण्डाल एवं डोम आदिसे यदि विम्ब (लिंग या मूर्ति) छू जाय तो दोषोंकी शान्तिके लिए मन्दिर और मूर्ति दोनोंकी शुद्धि करनी चाहिए! और जबतक शुद्धि न हो तबतक पूजा बन्द रखनी चाहिए। क्योंकि विना शुद्धि किये पूजा करनेपर शासक राष्ट्र, मन्दिर और गाँवका निःसन्देह नाश हो जाता है।

पञ्चभिर्ब्रह्महत्यादिमहापातकसंयुतैः ।
पाषण्डैर्नास्तिकैश्चैव सूतिक्योदक्ययाथवा ॥ १ ॥
अन्यैश्च पतितैर्वाथ तथान्यप्रतिलोमजैः ।
ध्रुवबेरे च संस्पृष्टे स्पृष्टे बिम्बे च कौतुके ॥ २ ॥
महापातक संयुक्तैश्चांडालाद्यैरुदक्यया ।
सूतिक्या वाथ संस्पृष्टे हवींषि विनिवेदिते ॥ ३ ॥
महाशान्तिं च सप्ताहमब्जाग्नौ जुहुयात्पुनः ।
ब्राह्मणान् भोजयित्वा च शक्तितो दक्षिणां ददेत् ॥४॥
अधिवासं च पूर्वोक्तं कारयित्वा यथाविधि ।
ध्रुवबेरे प्रकुर्वीत स्पृष्टे तत्र च पूर्ववत् ॥ ५ ॥
वास्तुहोमं तथा हुत्वा स्नपनोक्तक्रमेण च ।
कलशैः स्नापयित्वैव प्रतिष्ठां कारयेत्पुनः ॥ ६ ॥

(समूर्तार्चनाधिकरण, अध्याय ७३)

अर्थात् ब्रह्महत्या आदि पाँच महापाप करनेवालों, पाखंडियों, नास्तिकों, रजःस्वला तथा प्रसूता स्त्रियों, पतितों तथा चण्डाल आदि प्रतिलोमजोंसे ध्रुवबेर, बिंब एवं कौतुकके छू जानेपर या इनके छुए हवि निवेदन करनेपर एक सप्ताहतक महाशान्ति तथा अब्जाग्निमें हवन करे और ब्राह्मणभोजन कराकर यथाशक्ति दक्षिणा दे ।

पुनः प्रतिष्ठाके प्रकरणमें निर्णय सिन्धुकारने हयशीर्ष पञ्चरात्रका वचन उद्धृत किया है—

चाण्डालमद्यसंस्पर्शदूषिता वह्निनाथवा ।
अपुण्यजनसंस्पृष्टा विप्रक्षतजदूषिता ॥
संस्कार्येतिशेषः ।

(निर्णयसिन्धुधृत हयशीर्ष पञ्चरात्र)

इसका अभिप्राय है कि चाण्डाल आदि अस्पृश्योंके स्पर्श होनेपर,

शरावके छींटे पड़नेपर, अग्निसे जल जानेपर, पापियोंके स्पर्श होनेपर और ब्राह्मणके रुधिर लगनेपर प्रतिमाका संस्कार करना चाहिए।

चौरचण्डालपतितश्वोदक्यास्पर्शने सति।
शवाद्युपहते चैव प्रतिष्ठां पुनराचरेत्॥

(निर्णयसिन्धुधृत सिद्धान्तशेखर)।

चोर, चंडाल, पतित, कुत्ता और रजःस्वलाके स्पर्श होनेपर पुनः प्रतिष्ठा करनी चाहिए।

पूर्वप्रतिष्ठितस्याबुद्धिपूर्वकमेकरात्रं द्विरात्रमेकमासं द्विमासं वार्चनादिविच्छेदे शूद्ररजःस्वलाद्युपस्पर्शने पूर्वोक्तकाले पुण्याहं वाचयित्वा, युग्मान् ब्राह्मणान् भोजयित्वा, निशायां जलाधिवासं कृत्वा, श्वोभूते कलशपूर्णेन पञ्चगव्येन तत्तन्मन्त्रैः स्नापयित्वा, अन्यं कलशं शुद्धोदकेनापूर्य, तस्मिन्नवरत्नानि प्रक्षिप्य, तं कलशं तत्तद्गायत्र्याष्टसहस्रमष्टशतमष्टाविंशतिवारं वाभिमन्त्र्य तेनोदकेन देवं स्नापयेत्। ततः शुद्धोदकेन स्नापयेदष्टसहस्रमष्टशतमष्टाविंशतिं वा पुरुषसूक्तेन मूलमन्त्रेण च। ततः पुष्पाणि दत्त्वा यथासंभवमर्चयित्वा गुडौदनं निवेदयेत्॥

(नि० सिं० : बौधायन सूत्र)

पहलेसे प्रतिष्ठा की हुई मूर्त्तिकी यदि अज्ञानसे एक-दो रात या एक-दो महीनेतक पूजा आदि भंग हो जाय या शूद्र, रजःस्वला आदिका स्पर्श हो जाय तो स्वस्तिवाचन कराकर युग्म (दो आदि सम) ब्राह्मणोंको भोजन कराकर रात्रिमें जलाधिवास करके प्रातःकाल होनेपर कलसमें भरे पंचगव्यसे उन-उन मन्त्रोंसे स्नान कराकर और दूसरे कलशको शुद्ध जलसे भरकर उस घड़ेमें नवरत्न डालकर उस कलसको आठ हजार आठ सौ अठ्ठाइस वार (८८२८) अभिमंत्रित कर उस जलसे देवताको नान करावे, फिर शुद्ध जलसे स्नान करावे, उसके बाद आठ हजार

आठ सौ अठ्ठाईस फूलोंको पुरुषसूक्त या मूल मन्त्रसे चढ़ाकर गुड़ और भातका नैवेद्य लगावे। यदि जानकर पूजा भंग की गयी हो तो फिरसे पहले कहे गये विष्णु वाक्यके अनुसार प्रतिष्ठा करावे।

चण्डालैः सूतिकोदक्याम्लेच्छैर्वा पुल्कसादिभिः।
संस्पृष्टे भगवद्बिम्बे गोघृतेनाभिषिच्य तम् ॥१५६॥
संप्रोक्षणं च विधिवत्कृत्वा शान्ति समाचरेत्।
गो–दानादिं तथा कुर्याद् ब्राह्मणान् चापि भोजयेत् ॥१५७॥
(ईश्वर संहिता अ० १६)

चण्डाल, प्रसूता स्त्री, रजःस्वला, म्लेच्छ, पुल्कस आदिसे स्पर्श हो जाने पर बिम्बका गोघृतसे अभिषेक करना चाहिए। फिर विधिपूर्वक ब्राह्मण भोजन भी करा देना चाहिए।

प्रासाददेव-हर्म्याणां चण्डालपतितादिषु।
अन्तः प्रविष्टेषु तथा शुद्धिः स्यात् केन कर्मणा।
गोभिः संक्रमणं कृत्वा गोमूत्रेणैव लेपयेत्।
पुण्याहं वाचयित्वा तु तत्तोयैर्दर्भसंयुतैः।
संप्रोक्ष्य सर्वतः पश्चाद् देवं समभिषेचयेत् ॥४१०॥
पञ्चामृतैः पञ्चगव्यैः स्नापयित्वाऽथ वैष्णवैः।
प्रत्यृचं पावमान्यैश्च वैष्णवैश्चाभिषेचयेत् ॥४११॥
अष्टोत्तरसहस्रं वा शतमष्टोत्तरं तु वा।
चतुर्भिर्वैष्णवैर्मन्त्रैः स्नाप्य पुष्पाञ्जलिं तथा ॥४१२॥
श्रीसूक्तेन तदा दिव्यैर्दद्यान्नीराजनं द्विजः ॥४१३॥
(वृद्धहारीतस्मृति अ० ६)

चंडाल, पतित आदिके मन्दिरमें प्रवेश करनेपर मकानों एवं देवालयोंकी किस प्रकार शुद्धि होती है इस प्रश्नपर महर्षि हारीतने उत्तर

दिया कि उन मकानों एवं मन्दिरोंमें गौओंका वास, गोमूत्रसे लेपन तथा पुण्याहवाचन कराकर अभिमंत्रित जलसे कुशोंके द्वारा मन्दिरके चारो तरफ संप्रोक्षण करे। बाद प्रतिमाका अभिषेक करे। पंचामृत एवं पंचगव्यसे मूर्तिको स्नान कराकर पावमानी ऋचा एवं वैष्णव सूक्तसे अभिषेक करे। बाद विधिपूर्वक स्नान, पुष्पांजलि और नीराजनकी व्यवस्था करे।

चण्डालाद्यैश्च सूतिक्यामहापातकसंयुतैः ॥ १६ ॥
गर्भालये प्रविष्टे च बिम्बस्यातीव पार्श्वतः।
अन्यविप्रप्रवेशे तु स्पृष्टे बिम्बे च मोहतः ॥ १७ ॥
गोमयेनोपलिप्यैव प्रोक्षयेत् पञ्चगव्यकैः।
वास्तुहोमं च हुत्वैव पर्यग्निं कारयेत्पुनः ॥ १८ ॥
अन्यद्रव्यस्य शुद्धिं च यथाविधि च कारयेत्।
तथाऽब्जाग्नौ महाशान्तिमेकाहं जुहुयात्पुनः ॥ १६ ॥
कलशैर्विधिना सम्यक् स्नापयेत स्वशक्तितः।
पुनः प्रतिष्ठामत्रापि कारयेदिति केचन ॥ २० ॥
(समूर्तार्चनाधिकरण अ० ७३)

चंडाल, प्रसूता स्त्री, महापातकी यदि गर्भगृहमें बिम्बके अत्यन्त सन्निकट पहुँच जायँ तो गोबरसे लीपकर पञ्चगव्यसे प्रोक्षण कर एवं वास्तुहोम कर पर्यग्निकर्म कराये। अन्य द्रव्योंकी विधि पूर्वक शुद्धि कर ले। इसके बाद अब्जाग्निमें महाशान्ति होम करे। अनन्तर स्नपनोक्त विधिसे कलशोंसे यथाशक्ति अच्छी तरह अभिषेक करे। कुछ लोगोंका मत है कि बिम्ब स्पर्शकी तरह यहाँ भी फिरसे प्रतिष्ठा करानी चाहिए।

एतेषां गर्भगेहान्तःप्रवेशे नवभिर्घटैः ॥ १३४ ॥
संस्नाप्य देवदेवेशं शान्तिहोमादिकं चरेत् ॥
(ईश्वर सं० अ० १६)

अर्थात् चण्डाल आदिका यदि गर्भ गृहमें प्रवेश हो जाय तो नव घड़ोंसे देवताका अभिषेक कर शान्ति होम आदि कर्म करे।

पञ्चपातकैश्चाण्डालाद्यैश्चाऽऽलये प्रविष्टे तत्स्पृष्टहविर्निवेदने च सप्ताहं महाशान्तिं हुत्वा वित्तानुसारेण कलशैस्संस्नाप्य पुनः प्रतिष्ठां कारयेत्।

(विमानार्चना कल्प पटल ६६)

पंच महापातकियों और चंडाल आदिके मंदिरमें घुस जानेपर या उनके छुए हविका अर्पण कर देनेपर एक सप्ताह तक महाशान्ति होमकर वित्तानुसार देवताका कलसोंसे स्नान कराकर फिरसे प्रतिष्ठा करा दे। यही बात दूसरे शब्दोंमें फिर कही गयी है—

आलयाभ्यन्तरे प्रविष्टे तत्स्पृष्टहविर्निवेदने च द्रव्यं यथाविधि शोधयित्वा वास्तु होमं हुत्वा पर्यग्निपञ्चगव्याभ्यां शोधयित्वा पुण्याहं कृत्वा देवं कलशैस्संस्नाप्य नित्याग्नौ वैष्णवं विष्णुसूक्तं पुरुषसूक्तं रौद्रं सौम्यं ब्राह्मं श्रीसूक्तं महीसूक्तं च हुत्वा पुनः प्रतिष्ठां कारयेत्।

(विमानार्चना कल्प पटल ६६)

मंदिरके प्रथम आवरणमें भी रजःस्वला, चंडाल आदिका प्रवेश निषिद्ध है—

सूतिकोदक्यारजकध्वजाऽऽद्यन्त्यजातिभिः प्रथमावरणे प्रविष्टे, परिषद्दवानामर्चास्थाने संस्पृष्टे, प्रविष्टे च दर्भोल्केनोद्दीप्य वास्तुस्नपनोक्तमन्त्रैः पञ्चगव्यप्रोक्षणं पुण्याहं च कुर्यात्, नित्याग्नौ दौवारिक मन्त्रं, द्वारपालकमन्त्रं वैष्णवं च जुहुयात्। बाह्यावरणस्य संमार्जनोपलेपनप्रोक्षणैः शुद्धिर्भवति।

(विमानार्चना कल्प पटल ६९)

प्रसूता या रजःस्वला स्त्री, धोबी तथा ध्वज आदि अन्त्यजोंके प्रथम आवरणमें घुस जानेपर तथा पार्षद देवतओंके पूजास्थान छू लेनेपर या उसमें घुस जानेपर कुश जलाकर स्नपन विधिमें उक्त मन्त्रोंके द्वारा पंचगव्यसे प्रोक्षण और पुण्याहवाचन करे तथा नित्याग्निमें दौवारिक मन्त्रों, पालक मन्त्रों एवं वैष्णव मन्त्रोंसे हवन करे। बाहरी आवरणकी शुद्धिके लिए झाड़ना, बहारना, लीपना तथा प्रोक्षण करना अपेक्षित है।

प्रसूता, रजःस्वला अन्त्यज आदिके आकस्मिक प्रवेश पर उपर्युक्त शुद्धिकृत्य लागू होते हैं। किन्तु इन लोगोंका मंदिरमें वह प्रवेश यदि कुछ दिनोंतक निरन्तर चालू रहे तो और अधिक प्रत्यवाय लगता है। इस लिए शुद्धिकी व्यवस्था भी अधिक बढ़ जाती है। तब केवल पुनः प्रतिष्ठासे काम नहीं चल सकता, तब तो महा प्रतिष्ठाकी आवश्यकता पड़ जाती है—

एतेषु प्रथमावरणे, द्वितीये वा, नैरन्तर्येण संचरत्सु मासे अतीते मासमेकं महाशान्ति हुत्वा कर्षणादि पुनः संस्कारं कृत्वा महाप्रतिष्ठां कारयेत्।

(विमानार्चना कल्प पटल ६९)

अर्थात् पंच महापातकी, अन्त्यज आदि यदि मंदिरके पहले या दूसरे आवरणमें एक महीने तक लगातार आते-जाते रहें तो एक महीने तक महाशान्ति हवन करे तथा कर्षणादि संस्कार फिरसे करके महाप्रतिष्ठा करे।

यही बात ईश्वर संहिताके शब्दोंमें देखें—

चण्डालैः श्वपचैर्वापि प्रमादाद्विष्णुमन्दिरे ॥१६६॥
निरन्तरं कृते वासे मासकेन मुनीश्वराः !
मृत्पात्राणि परित्यज्य सम्मार्ज्य भगवद्गृहम् ॥१६७॥

गोमयेनोपलिप्याथ पर्यग्निकरणं चरेत्।
पुण्याहं वाचयित्वाथ प्रोक्षयेत् पञ्चगव्यकैः ॥१६८॥
गोगणं वासयेत् तत्र सर्वदोषप्रशान्तये।
वाचयित्वा महाशान्तिं ब्राह्मणैर्वेदपारगैः ॥१६९॥
भोजयित्वा द्विजांस्तत्र तेभ्यो दद्यात् तु दक्षिणाम्।
एकं मासं तु मासार्द्धं सप्त पञ्च त्र्यहन्तु वा ॥१८०॥
कृत्वा शुद्धिं मन्दिरस्य बिम्बानां गोघृतैः पुरा।
कृत्वाभिषेचनं प्राग्वत्संप्रोक्षणमथाचरेत् ॥१७१॥

(ईश्वर संहिता अ० १९)

नारद जीने मुनियोंसे कहा—मुनीश्वरो, चाण्डाल और श्वपच आदि यदि असावधानी वस लगातार एक महीने तक विष्णु मंदिरमें रह जायं तो मिट्टीके सभी पात्रोंको फेंककर मंदिरको धो डाले। उसके बाद गोबरसे लीपकर पर्यग्निकरण करे। फिर पुण्याहवाचन कराकर पञ्चगव्यसे प्रोक्षण कर दे। बादमें सब तरहके दोषोंकी शान्तिके लिए वहाँ गौओंको बसा दे। फिर वेदके पारंगत ब्राह्मणोंसे महाशान्तिका पाठ कराकर ब्राह्मण भोजन करावे और दक्षिणा दे। इस तरह एक महीना। पंद्रह दिन, सात दिन, पाँच दिन, अथवा तीन दिन तक मंदिरकी शुद्धि करे। बिंबोंका गोघृतसे अभिषेक करके पहलेकी तरह सम्प्रोक्षण क्रिया करे।

तेषु प्रासादाभ्यन्तरे बाह्ये च संचरत्सु सम्वत्सरे अतीते अर्चनादीनि संत्यज्य कौतुकादिरक्षणं कृत्वा गर्भागारादिसप्त प्राकारेषु गाः वासयित्वा मासेऽतीते सर्वत्र शुद्धिं कृत्वा मासत्रयं महाशान्तिं हुत्वा कर्षणादिपुनस्संस्कारं कृत्वा बालालयं

---

१. खननं हरणं दाहः पूरणं गोनिवासनम्॥
विप्रोच्छिष्टं च गव्यञ्च सप्तैताः स्थानशुद्धयः।
(विष्णु सं० २५)

संकल्प्य जलाधिवासादीनि कारयित्वा विम्वशुद्धिं अशीत्यधिकसहस्रकलशैः संस्नाप्य ब्राह्मणान् भोजयित्वा वैष्णवान् सम्पूज्य देवं बालालये प्रतिष्ठाप्य आलयादौ सर्वत्र नवीकरणं कृत्वा महाप्रतिष्ठां कारयेत्।

(विमानार्चन कल्प पटल ६६)

पंच महापातकी, चंडाल आदिके मंदिरके भीतर बाहर आते-जाते यदि एक वर्ष बीत गया हो तो पूजा-पाठ बंद कर दे। कौतुक (उत्सवके समय रखी जानेवाली चल प्रतिमा) आदिकी रक्षा करते हुए गर्भ गृह आदि सातो प्राकारोंमें एक मास तक गौएँ बांध दे। उसके बाद शुद्धिकर तीन मास तक महाशान्ति हवन करते रहे। कर्षण आदि संस्कार फिरसे करे। जलाधिवास आदि कराके विंबको शुद्धिकर एक हजार अस्सी कलशोंसे स्नान करावे। फिर ब्राह्मण भोजन और वैष्णव

(स्फ्य आदिसे नापकर मिट्टीको खोदकर फेंकना खनन, कुश जलाकर उसकी राखको हटाना-हरण, बाहरसे पवित्र मिट्टी लाकर खोदी हुई जमीनको भरना-पूरण, कुछदिन तक वहाँ गौओंको बांध रखना, ब्राह्मणोंको भोजन कराना और जूठा हटाकर पंचगव्य छिड़कना, ये सात भूमिशोधनके प्रकार हैं।

(देखिये १७--२०)

२. क्षालन—प्लावन—स्नान—मार्जनानि यथाक्रमम्।
धारावगाहनं पश्चादभिषेकोऽत्र सप्तमः॥

विष्णु सं० (२१--२२)

(कुश आदिसे क्षालन, चंदन, अक्षत, पुष्पके जलसे विना मंत्र पढ़े प्लावन, मंत्रपूर्वक जलसे स्नान, कूर्चके अग्रभागसे मंत्र द्वारा मार्जन, धारावगाहन और अभिषेक ये सात प्रकार विंब शोधनके हैं। २३ से ३७ तकके श्लोकोंमें इनका वर्णन है।)

पूजनकर बिंबको बालालयमें प्रतिष्ठित कर दे। मंदिरके सभी हिस्सोंमें नवीकरण[1] कराके महा प्रतिष्ठा करा दे।

चाण्डालश्वपचाद्यस्तु प्रमादाद् भगवद्गृहे।
कर्मण्यधिकृताश्चैतैः सहवासोऽपि च द्विजाः! ॥१७३॥
स्नात्वा सर्वे कुशाम्भश्च पीत्वा चान्द्रायणादिकम्।
कृत्वा चालयसंशुद्धिं द्विजभोजनपश्चिमम् ॥१७४॥
सम्प्रोक्षणादिकं सर्वं प्राग्वदेव समाचरेत्।
अन्ते महोत्सवं कुर्यात् सर्वदोषप्रशान्तये ॥१७५॥
(ईश्वरसंहिता अ० १९)

चण्डाल, श्वपच आदि यदि असावधानीवश मंदिरके किसी कार्यमें लग जायं अथवा उनके साथ सहवास हो जाय तो स्नान करके कुशोदक पीकर चान्द्रायण आदि व्रत करे। बाद मंदिरको शुद्धकर ब्राह्मण भोजन सम्प्रोक्षणादि कर्म पहलेकी तरह करे। इसके बाद सभी दोषोंकी शान्तिके लिए महोत्सव करे।

आगम ग्रन्थोंने दिव्य, आन्तरिक्ष और भौम भेदसे तीन तरहके अद्भुतोंका वर्णन किया है। भौमके चर और स्थिर दो भेद हैं। स्थिर अद्भुतमें अन्त्यज आदिका मन्दिर प्रवेश और बिंबस्पर्श भी परिगणित है—"स्थिरेषु........पाषण्डान्त्यजातिशृगालादिवर्णास्पृश्यस्पर्शन--प्रवेशन--स्तम्भविरोहण--चलन......जलरक्तस्रावादीनि (विमार्चना कल्प पटल ७५)। वैखानसागमने अपने अद्भुतशान्ति प्रकरणमें मन्दिरमें चाण्डाल आदिके प्रवेशको उत्पात मान उसकी शान्तिके लिये प्रोक्षणकी बात लिखी है—

देवालये चाण्डालादिप्रवेशे तथालयं सम्यक् संशोध्य देवेशं संस्नाप्य शान्तिं हुत्वा........"(वैखानसागम पटल ६७)।

---

१ नवीकरणको उद्देश्यकर प्रोक्षण आदिकी विधि विष्णुसंहिताके २७ वें पटलमें देखी जा सकती है।

३

विमानार्चन कल्पने अद्भुतोंकी शान्ति न करनेपर जो-जो हानियाँ होती हैं उन सबोंका भी उल्लेख किया है—

तेषु वेर-पीठ—गर्भगृहभवानि ब्राह्मण-राज-राष्ट्र-विनाशकारणानि, विशेषेण कर्त्राराधकयोश्च। प्रासादोत्पन्नानि क्षत्रियस्य। प्रासादे अधिष्ठानपादप्रस्तर-ग्रीवाशिखरोद्भवानि क्रमेण क्षत्रियवंशोद्भव-मुख्याभिषेकयोग्ययुवराजाऽभिषिक्तमहाराजानामातंक—भयाऽनावृष्टि-कराणि। प्रथमावरणे वैश्यजातीनां, मंत्रिपुरोहितस्य, माण्ड-लिकानाञ्च भयावहम्, प्राणपीडादि भयप्रदञ्च। द्वितीयावरणा-दिषु, शूद्रजातीनां सर्वदुःखकरम्; सस्यनाशनम्; गजाश्वाजमहिष-पशूनां नाशकरम्। अग्निकुण्डे पुरोहितस्य; चतुर्मुखस्थाने द्विजातीनां; रुद्रालये सर्वजातीनां; गुहालये नृपस्य माण्डलिकानां च; वक्रतुण्डालये सैनेशानां; श्रिय आलये राजपत्नीनां; दुर्गास्थाने अन्यस्त्रीणां; मातृस्थाने निकृष्टजातीनां; सोमस्थाने चौषधीनां; भास्करालये नृपवाहनशस्त्रजीविनां; अन्यदेवालये तत्तद्भक्तानामपि लक्षयेत्।

(विमानार्चनकल्प पटल ७५)।

अद्भुतोंमें, जैसा कि ऊपर दिखलाया जा चुका है; अन्त्यज आदिका मन्दिर प्रवेश तथा उनके द्वारा मूर्ति स्पर्श भी परिगणित है। अतः प्रकृतमें उपर्युक्त वचनका अभिप्राय यह हुआ कि अन्त्यज आदि यदि मूर्ति, पीठ या गर्भगृहमें प्रवेश कर जायँ तथा मूर्ति छू लें तो ब्राह्मण, शासक और राष्ट्रका विनाश हो जाता है। विशेषकर उसके करनेवाले और आराधना करनेवाले पर यह आपत्ति आती है। अन्त्यज आदिके प्रासादमें चले जानेपर क्षत्रियके लिए हानिप्रद होता है। प्रासादके विभिन्न अंशोंतक पहुँचनेके फलमें विभिन्नता है। कहीं तो क्षत्रिय जातिके अभिषेकार्ह युवराजपर तथा कहीं अभिषिक्त प्राप्त शासकपर खतरा उपस्थित हो जाता है और अवर्षणकी स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

अन्त्यज आदि यदि मन्दिरके पहले घेरेमें घुस जायँ तो वैश्य, मन्त्री-पुरोहित तथा माण्डलिकोंके लिए भयावह रहता है, प्राण पीड़ा आदिका भय उपस्थित हो जाता है। यदि वे लोग दूसरे आवरणमें पहुंच जायँ तो शूद्र जातिपर तरह-तरहकी विपत्तियाँ टूटने लगती हैं; साथ ही खेती तथा हाथी, घोड़े, बकरी, भैंस आदि पशुओंका नाश हो जाता है। इसी तरह अन्त्यज आदि यदि अग्नि कुण्डतक पहुँच जायँ तो पुरोहितका; ब्रह्मा जीके स्थानतक पहुँचनेपर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यका; शिवालयमें जानेपर सभी जातियोंका; स्कन्दगृहमें जानेपर राजाओं और माण्डलिकोंका; गणेश मन्दिरमें पहुंनेपर सेनापतियोंका; लक्ष्मीके मन्दिरमें जानेपर राजपत्नियोंका; दुर्गाके मन्दिरमें घुसनेपर सभी स्त्रियोंका; षष्ठीमातृकाओंके स्थानतक पहुँचनेपर नीची जातिके लोगोंका; चन्द्रमाके स्थानतक पहुँचनेपर औषधियोंका; सूर्य स्थानतक पहुँचनेपर शासक, सवारी और शस्त्रजीवी लोगोंका तथा अन्यान्य मन्दिरोंमें घुसनेपर उन-उन देवताओंके उपासकोंकी हानि समझनी चाहिए।

समूर्तार्चनाधिकरणने अद्भुतके कुपरिणामोंको कुछ ही शब्दोंमें दिखला दिया है—

एवमाद्यद्भुते दृष्टे राज्ञो राष्ट्रस्य वै पुनः।
ग्रामस्यापि विनाशः स्यात्ततश्शान्तिं समाचरेत्॥(पटल७२)

अर्थात् अन्त्यज मन्दिर प्रवेश आदि उत्पातोंके होनेपर शासक, राष्ट्र और गाँवका विनाश हो जाता है। अतः उनकी शान्ति कर देनी चाहिए।

विष्णु संहिताने भी आदेश दिया है कि उत्साहके साथ प्रायश्चित्त कर डालो नहीं तो सर्वनाश हो जायगा—

प्रायश्चित्तं यथोत्साहमन्यथा सर्वनाशनम्।
(वि० सं०२५।१४)

विमानार्चनकी पंक्तियोंमें ये बातें कुछ विस्तारसे आयी हैं—

तेषु (अद्भुतेषु) दृष्टेषु सद्यः शान्ति कुर्यात् । अज्ञानादर्थ-लोभाद्वा न कुर्याच्चेत् कर्त्राराधकयोर्ग्रामस्य च महद्भयं राज्ञो राष्ट्रस्य क्षोभश्च जायते । तस्मात् द्वादशाहाभ्यन्तरे शान्ति कुर्यात् । द्वादशाहातीते महाशान्ति हुत्वा वैष्णवान् संपूज्य शक्तितो दक्षिणां दत्त्वा आरभेत । मासे अतीते महाशान्ति सप्ताहं हुत्वा विप्रशतं भोजयित्वा देवमनुमान्य कुर्यात् । षण्मासातीते भगवान् न रमेत । तस्मात् सर्वप्रयत्नेन शान्तिमारभेत ।

(विमाना० प० ७५)

दीखते ही अद्भुतोंकी शान्ति कर दे । अज्ञानसे या वित्तशाठ्यसे यदि शान्ति न करे तो करनेवाले, आराधक और ग्रामके लिए बहुत बड़ा भय तथा शासक और राष्ट्रके लिए क्षोभ उपस्थित हो जाता है । इस लिए बारह दिनके भीतर शान्ति कर डाले । बारह दिन बीत जानेपर केवल शान्तिसे काम नहीं चल सकता, तब तो महाशान्ति, वैष्णव पूजन एवं दान-दक्षिणाकी अपेक्षा हो जाती है । महीनेके बाद तो वह महाशान्ति हवन सप्ताह तक चलाना पड़ जाता है तथा सौ ब्राह्मणोंको भोजन कराकर देवताको मनाना भी पड़ जाता है । और यदि कहीं छः महीने बीत गये तब तो फिर भगवानका वास ही नहीं रह जाता । इसलिए प्रयत्न पूर्वक शान्ति कर डाले ।

पारंपरिक स्पर्श और प्रवेश भी निषिद्ध

शास्त्रोंने रजस्वला, चंडाल आदिके पारंपरिक स्पर्श और प्रवेशसे भी प्रायश्चित्तका विधान किया है । यदि कोई पुजारी इनसे छू जाय और बिना स्नान किये बिंबका स्पर्श कर ले या मन्दिरमें चला जाय तो उस दशामें भी बिंबका स्नापन, शान्ति होम आदि शुद्धिकृत्य अपेक्षित हो जाता है—

अस्नातो देशिकश्चैवं चण्डालाद्युपघातितः ।
केशास्थ्याद्यशुचिस्पृष्टः स्त्रियं गत्वा ह्यनाप्लुतः ॥

स्पृशेच्चेद्भगवद्बिम्बं स्नापयेन्नवभिर्घटैः ।
आचरेच्छान्तिहोमं च शतवारं जपेन्मनुम् ॥
(ईश्वर संहिता अ० १६।१३०-१३१)।

अर्थात् बिना नहाये, चंडाल आदि योनिज, कालज एवं कर्मज स्पर्शानर्ह व्यक्तियों एवं केश, हड्डी आदि अपवित्र वस्तुओंसे छू जानेपर तथा स्त्री संयोगके बाद गुरु या पुजारी यदि बिंबको छू ले तो बिंब अपवित्र हो जाता है। शुद्धिके लिए बिंबको नव घड़ोंसे स्नान कराकर शान्ति होम तथा सौ बार मन्त्र[1]का जप करे।

"परस्त्रीगमनासक्तः [2]कुण्डो वा गो[3]लकोपि वा।
रजस्वलान्त्यजाद्यैश्च संस्पृष्टो गर्दभादिभिः ॥
स्पृशेच्चेद्भगवद्बिम्बमधमोत्तममार्गतः।
संस्नाप्य देवं विधिवच्छान्तिहोमं तथाचरेत् ॥
एतैः प्रविष्टे धामान्तः कुर्यादधममध्यमम्।
स्नपनं देवदेवस्य शान्तिहोमं तथा चरेत् ॥
(ईश्वर संहिता, अध्याय १६।१३६-४०-४१)।

---

१. चण्डालपूर्वकः कश्चित् प्रविष्टो यदि मन्दिरम् ॥१०९॥
सन्त्यजेन्मृण्मयान्सर्वान् भाण्डानन्यत्रवारिणा।
प्रोक्षणीयकृतस्नानस्तत्रस्थः कपिलं जपेत् ॥११०॥
शतानि द्वादश मुने तत्र सर्वं च शुध्यति ॥
(जयाख्य सं०, प० २७)

(चंडाल आदि यदि मन्दिरमें घुस जायं तो मिट्टीके सभी बर्तनोंको हटाकर प्रोक्षण-स्नानकर बारह सौ बार 'ओंटहूँट्ह्रौं नमः अनन्तभासाय कपिलाय स्वाहा' इस कपिल मन्त्रका जप करे।)

२. ३. विधिहीनमन्यपूर्वायां मृतभर्तृकायां गोलको, जीवभर्तृकायां कुण्डश्च विप्रौ द्वौ निन्दितौ स्याताम्।
(वैखानस गृह्य सू० १०।११)

अर्थात् परायी स्त्रीमें आसक्त, जारज, विधवा पुत्र, रजस्वला, गदहा, अन्त्यज आदिसे स्पृष्ट कोई व्यक्ति यदि मूर्तिको छू दे तो अधमोत्तम पद्धतिसे देवताका स्नान कराकर शान्ति होम करे। और उनसे स्पृष्ट वह व्यक्ति यदि मन्दिरके भीतर पैठभर जाय तो (स्पर्शसे कम प्रायश्चित्त होनेके नाते) अधममध्यम मार्गसे स्नापन और शान्ति होम करे। यही बात नीचे लिखे गये वाक्योंमें भी कही गयी है—

चण्डालैर्वा तथा म्लेच्छैरुदक्यासूतिकादिभिः ॥३०९॥
महापातकिभिः स्पृष्टः स्त्रियं गत्वा ह्यनाप्लुतः।
पूजयेद् यदि देवेशं नीचमध्यममार्गतः ॥३१०॥
संस्नाप्य देवं तदनु पुनः पूजनमाचरेत् ॥

(ईश्वर संहिता अध्याय १९)

'तैस्संसर्गिणां स्पर्शे सूतिकादीनामुक्तं प्रायश्चित्तं कारयेत्'।
'तत्संसर्गिणां स्पर्शे स्नपनादिना शुध्यति,'।
'तत्संसर्गिणां दोषो नास्ति'। (विमाना क०)

विष्णुसंहिताने ऊपर आयी बातोंका संक्षेपमें उल्लेख किया है—

चण्डालश्वपचैः स्पृष्टे प्रासादे बिंब एव वा।
अर्चाद्रव्ये च संस्पृष्टे जलसम्प्रोक्षणादिकम् ॥
पञ्च षष्ठ सप्त वाहानि महास्नानं द्विजार्चनम्।

(विष्णु संहिता, पटल २८।२८-२९)

चण्डाल आदिसे प्रासाद, बिंब और पूजाकी वस्तु छू जाय तो जलसे सम्प्रोक्षण आदि कर्म कर पांच, छः या सात दिन तक महास्नान और ब्राह्मणकी पूजा करनी चाहिए।

ऊपरके उद्धरणोंसे इस बातका भी संकेत मिलता है कि "एनसि गुरुनि गुरूनि, लघुनि लघूनि" इस नियमसे स्पर्श प्रवेश-विशेषसे प्रायश्चित्त विशेष होता है। ये बातें ईश्वर संहिता और विमानार्चना कल्पमें विस्तारसे देखी जा सकती हैं।

प्रवेशके बाद पूजन हानिकर

अन्त्यज आदिके मन्दिरमें प्रवेश कर लेने तथा बिंब आदिके स्पर्श कर लेनेके बाद जब तक प्रायश्चित्त न कर लिया जाय तब तक बिंब अस्पृश्य हो जाता है और पूजाके योग्य नहीं रह जाता।

(क) उत्पातेषूपजातेषु न कार्या पूजना हरेः।
अस्पृश्याः प्रतिमापीठप्रासादाः साङ्गदेवताः॥
(विष्णुसंहिता पटल २५।४)

(ख) अकृतायान्तु निष्कृत्यामपूज्यं सर्वथा बुधैः।
(विष्णु सं० २५।६)

अर्थात् हरिजन मन्दिर प्रवेश आदि उत्पात होनेपर देवताकी पूजा नहीं करनी चाहिए। तब अंग देवताओंके साथ-साथ मूर्ति, पीठ और प्रासाद ये सब अस्पृश्य हो जाते हैं। इसलिए जब तक प्रायश्चित्त नहीं कर लिया जाता तबतक किसी तरह पूजा करना मना है। और यदि बिना प्रायश्चित्त किये देवताको छू दिया जाय या उनकी पूजाकर दी जाय तो पूजकको देवताके कोपका भाजन होना पड़ता है—

अकृतायान्तु निष्कृत्यां स्पृष्टाः कुप्यन्ति देवताः।
पूजिता वा (विष्णु सं० प० २५।५)

प्रायश्चित्त कर्म जहाँ तक हो सके शीघ्र ही कर देना चाहिए। क्योंकि शास्त्रोक्त समयका अतिक्रमण कर देनेपर बिंबमें देवताका सान्निध्य नहीं रह जाता और उसमें भूत-प्रेतका आवेश हो जाता है। फिर तो इन दुष्ट योनियोंके द्वारा प्रजामें रोग, शोक आदिका भयानक प्रसार होने लगता है।

(क) विलम्बने तु निष्कृत्या विनश्येद् देवसन्निधिः।
तत्स्थाः प्रेताः भयं कुर्युर्व्याधि-शोकादिभिर्नृणाम्॥
(वि० सं० २५।७)

(ख) प्रायश्चित्तं यथोत्साहमन्यथा सर्वनाशनम्।
(विष्णु सं० २५।१४)

ईश्वरके लिए भी अस्पृश्यता और संशोधन आवश्यक !

यहाँ प्रश्न यह उठता है कि जो ईश्वर रजस्वला, अन्त्यज आदिके तन-मनमें अभिव्याप्त है वही उनके स्पर्शसे अपवित्र कैसे हो जायगा; और विग्रह छोड़कर भाग भी कैसे सकेगा?

बात यह है कि व्यापक वस्तु जब अभिव्यक्तिकी स्थितिमें आ जाता है तो निराकार रूपसे कण-कणमें रहते हुए भी अभिव्यंजककी उपाधिका आश्रयण तो उसे करना ही पड़ता है। जीवात्मा व्यापक है, कण-कणमें अनुस्यूत है; वह न नर है न तो नारी ! किन्तु शरीर विशेषमें अभिव्यक्त होनेपर जीवन-मरण, छूआछूत आदि सारे औपाधिक भेद उसे आ ही घेरते हैं। अपनी स्त्री और परायी स्त्रीमें एक ही आत्मा है किंतु एक स्पृश्य रहती है दूसरी नितांत अस्पृश्य। इसी तरह ईश्वर शुचि-अशुचि सबमें व्याप्त है। परन्तु जब वे अवतारी विग्रहमें आते हैं (भले ही वह विग्रह सच्चिदानन्दरूप ही हो[1]) तब उनके प्रति भी हमें शुचि-अशुचिका भेद व्यवहारमें लाना ही पड़ता है। कोई भक्त उनके साथ यह तर्क लेकर तो नहीं भिड़ता कि निराकार रूपमें गंदे स्थानमें रहते ही हो तो मेरी इन गंदी वस्तुओंका उपभोग करो ही ! भगवानके अर्चा विग्रहमें शुचिताका यह व्यवहार हमारे लिए और अपेक्षित हो जाता है। ठीक उसी तरह, जिस तरह कि हमें किसी साधारण व्यक्तिकी अपेक्षा महापुरुषोंके प्रति अधिक शुचिताका व्यवहार बरतना पड़ता है। जिस तरह शरीरके घेरेमें आनेपर भूख-प्याससे अतीत आत्माके लिए रोटी, कपड़ा, मकानकी समस्या हल करनी पड़ती है उसी तरह प्रतिमाओंमें आप्तकाम परमात्माको आवाहित कर लेनेपर उनके लिए भी रोटी,

---

१. (क) राम त्वं परमात्मासि सच्चिदानन्दविग्रहः। (मुक्तिकोपनिषद्)
(ख) न तस्य प्राकृता मूर्तिर्मेदोमज्जास्थिसंभवा।
(ग) सर्वे नित्याः शाश्वताश्च देहास्तस्य परात्मनः॥

कपड़ा, मकान और शुचिता आदिकी व्यवस्था करनी पड़ती है। कुसुमाञ्जलिकारने इस विषयपर सुन्दर तर्कसिद्ध तथ्य रखा है—

प्रतिमादयस्तु तेन-तेन विधिना सन्निधापितरुद्रोपेन्द्रमहेन्द्राद्यभिमानिदेवताभेदास्तत्र-तत्राऽऽराधनीयतामासादयन्ति। दष्टमूर्छितराजशरीरमिव विषापनयनविधिनाऽऽपादितचैतन्यम्। सन्निधानञ्च तत्र तेषामहङ्कारममकारौ, चित्रादाविव स्वसादृश्यदर्शिनो राज्ञ इति।

(प्रथमस्तवक १२)

अर्थात् जैसे सांपके काट लेनेपर शरीर मूर्छित हो जाता है और मन्त्रोपचारसे उसमें फिर चैतन्यका संचार हो जाता है, वैसे जड़ प्रतिमाओंमें मन्त्रोंद्वारा इंद्र आदिक देवताओंका चैतन्य जाग जाया करता है। बाद उन देवताओंका उन मूर्तियोंमें 'यह प्रतिमा मेरी है' 'यह मैं हूँ' ऐसा भाव उत्पन्न हो जाता है। किन्तु अस्पृश्योंके स्पर्शसे उस अहंता-ममताका नाश हो जाता है—"अस्पृश्यास्पर्शादिना च तन्नाशात्।"

(न्यायकुसुमाञ्जलि टीका)

अग्नि जब निराकाररूपमें रहती है तब शुचि अशुचि सब जगह अनुस्यूत रहती है और शुचिता-अशुचिताका कोई भेद-भाव उसमें नहीं रहता। किन्तु वही अग्नि जब चितामें अभिव्यक्त हो जाती है तब अस्पृश्य हो जाती है[1] और उसे छू कर स्नान करना पड़ता है। इसी तरह यज्ञस्थलमें अभिव्यक्त अग्नि अत्यंत पवित्र मानी जाती है और उसकी पवित्रताकी रक्षा करनी पड़ती है। अशुद्ध वस्तु पड़ जानेपर वह दूषित हो जाती है और फिर यज्ञार्ह नहीं रह जाती। विष्णु संहिताने यज्ञिय अग्निकी यह

१. चितिञ्च चितिकाष्ठञ्च यूपं चाण्डालमेव च।
स्पृष्ट्वा देवलकञ्चैव सवासा जलमाविशेत्॥
(चिता, चिताकी लकड़ी, यूप, चंडाल और देवप्रतिमाओंको घर-घर घुमाकर पैसा कमाने वालेको छूकर सचैल स्नान करे।)

उपमा देकर दिखलाया है कि ठीक इसी तरह विष्णुका बिंब अन्त्यज मन्दिर प्रवेश आदिसे दूषित हो जाता है—

चिताग्निनिभं विष्णोर्बिम्बमुत्पातदूषितम् ॥ २५।५ ॥

शुचिताका यह खयाल प्रत्येक मजहबवालोंको अपने-अपने उपासना गृहोंमें करना ही पड़ता है। नापाक होनेपर मुसलमान भी नमाज नहीं पढ़ते। हवनकुंडके पास आर्यसमाजी काफी पवित्रता बरतते हैं। अपने उपास्यके पास तो कोई संप्रदाय जूता ले जाना पसंद नहीं करता। सनातन धर्ममें विशेषता यह है कि अन्य अंगोंकी तरह इसके शुचितावाले अंगका भी सांगोपांग निरूपण है।

वैदिक आधार

स्मृति, गृह्यसूत्र और आगमोंके जो वचन ऊपर उद्धृत किये गये हैं, उनसे स्पष्ट हो जाता है कि कुछ लोगोंके लिए मन्दिर प्रवेश और बिंब स्पर्श अत्यंत हानिकर है। इन वचनोंसे इस बातका भी संकेत मिल जाता है कि कालज, कर्मज और योनिज भेदसे अस्पृश्यता तीन प्रकारकी होती है। मासिकधर्म, जननाशौच एवं मरणाशौचसे जो अस्पृश्यता आती है वह कालज है। गोहत्या, ब्रह्महत्या आदि पातकोंसे कर्मज स्पर्शानर्हता, तथा चांडाल आदि योनियोंमें जन्म होनेसे योनिज अस्पृश्यता आती है। यही कारण है कि रजस्वला, पातकी एवं अन्त्यजका प्रायः साथ-साथ उल्लेख मिलता है। यहाँ अस्पृश्यताकी वेदमूलकता प्रदर्शित की जाती है।

(१) कालज अस्पृश्यता

तस्माद् मलवद्वाससा न संवदेन, न सहासीत, नास्या अन्नामद्याद् ब्रह्महत्यायै ह्येषां वर्णं प्रतिमुच्याऽऽस्ते।

(कृ० यजु० तै० सं० कां० २ प्रपा० ५ अनु० १।५)

(तस्मात्) इन्द्रकी ब्रह्महत्याका एक अंश महिलाओंने भी स्वीकार किया था और वह पाप उनके रजके रूपमें निकलता है इसलिए

(मलवद्वाससा) रजस्वला स्त्रियोंसे (न संवदेत) बात-चीत न करे (न सहासीत) उनके साथ न बैठे और (नास्या अन्नमद्यात्) उनका अन्न न खाये। उस अवस्थामें महिलाएँ रज रूपमें ब्रह्महत्याके अंशको (प्रतिमुच्य आस्ते) छोड़ती हैं।

इस उद्धरणसे स्पष्ट है कि रजस्वला होनेपर पूजनीय माताएँ एवं बहनें भी अस्पृश्य हो जाती हैं और उनसे बातचीत तक निषिद्ध हो जाता है। वेदने इस अवस्थामें उनके लिए अनेक अतिरिक्त कर्तव्य निश्चित किये हैं जिनमें अञ्जलि या मिट्टीके पात्रमें खानेका भी निर्देश है।

(२) कर्मज अस्पृश्यता

स्तेनो हिरण्यस्य सुरां पिब᳭श्च गुरोस्तल्पमावसन् ब्रह्महा च। एते पतन्ति चत्वारः पञ्चमश्चाचरᳩस्तैरिति।

(छान्दोग्य उप० अ० ५ खं० १०।९)

सोना चुरानेवाला, शराब पीनेवाला, गुरु पत्नीके साथ अनाचार करनेवाला और ब्रह्महत्या करनेवाला ये चारो पतित हैं और चारों जहन्नुम जाते हैं। पाँचवाँ पातकी वह होता है जो इनके साथ बातचीत, खान पान और स्पर्शका व्यवहार करता है।

(३) योनिज अस्पृश्यता

(क) तद् य इह रमणीयचरणा अभ्याशो ह यत्ते रमणीयां योनिमापद्येरन् ब्राह्मणयोनिं वा क्षत्रिययोनिं वा वैश्ययोनिं वाथ य इह कपूयचरणा अभ्याशो ह यत्ते कपूयां योनिमापद्येरन् श्वयोनिं वा सूकरयोनिं वा चण्डालयोनिंवा।

(छान्दो० उप० ५।१०।७)

जो शास्त्रविहित कर्मका आचरण करते हैं वे शुभयोनि—ब्राह्मण योनि, क्षत्रिय योनि, वैश्य योनि—को (चन्द्रमंडलसे पतनके बाद) प्राप्त करते हैं। और जो शास्त्र निषिद्ध कर्मका आचरण करते हैं वे धर्म

संम्बधसे रहित प्रायश्चितीय योनि—कुत्ता, सूअर, चंडाल आदि योनि- में (नरकसे लौटनेके बाद) जन्म लेते हैं।

बृहदारण्यकमें भी इस आशयका एक वचन है। इनसे स्पष्ट है कि पहले जन्ममें किये गये ब्रह्महत्या आदि पापोंके परिणाम स्वरूप चण्डाल आदि योनियोंमें जन्म होता है। इस लिए इन योनियोंमें आये प्राणियोंसे अस्पृश्यताका व्यवहार, उनके लिए और दूसरोंके लिए भी, हितावह होता है। दूसरी श्रुतिने इनकी स्पर्शानर्हताकी बात स्पष्ट कर दी है-

स्प्रष्टव्या सा न भक्ष्येन सश्वमांसेव पुल्कसी

(ना० परि० उप० ३।५)

अर्थात् सन्यासियोंको अहंताके स्पर्शसे उसी तरह बचना चाहिए जिस तरह कुत्तेके मांससे संम्बध रखने वाली पुल्कसीके स्पर्शसे बचा जाता है।

(ख) तस्मान्न जनमियात्, नान्तमियात्, नेत् पाप्मानं मृत्यु— मन्ववायानीति।

(बृह० उप० १।३।१०)

आचार्य शंकरके भाष्यके अनुसार इसका अर्थ यह है— तस्मात् [त अन्त्यं] जनं) प्राणदेवताने पापोंको अन्त्यजों एवं उनके वासस्थानोंमें स्थापितकर दिया इस लिए चंडाल आदि अन्त्यजके पास (न इयात् = न गच्छेत्, संभाषणादिभिः न संसृजेत्) न जाय, उनसे संभाषण आदिका संसर्ग न रखे। क्योंकि "तत्संसर्गो पाप्मना संसर्गः कृतः स्यात्, पाप्माश्रयो हि सः" उनके संसर्गसे पापका संक्रमण हो जाता है; उस योनिके लोग पापके आश्रय स्वरूप होते हैं।

---

१. यस्माद् भिक्षुर्हिरण्यं रसेन दृष्टं चेत्स ब्रह्महा भवेत्।
यस्माद् भिक्षुर्हिरण्यं रसेन स्पृष्टं चेत् स पौल्कसो भवेत्।
यस्माद् भिक्षुर्हिरण्यं रसेन ग्राह्यं चेत् स आत्महा भवेत्।
(परमहं० उप०)

(तज्जननिवासञ्च [अन्तं] दिगन्तशब्दवाच्यम्) श्रुतिमें जो दिगन्त शब्द और अन्त शब्द आये हैं उनका अर्थ है—अन्त्यज जनोंका निवास स्थान। उनके स्थानमें भी [नेयात्] जनशून्यमपि, जनमपि तद्देशवियुक्तमित्यर्थः) न जाय। अन्त्यज लोगोंके निवास स्थानमें, वे चाहे वहाँ रहें या न रहें, न जाय। इसी तरह अन्त्यजोंसे, चाहे वे अपने निवास स्थानमें हों या अलग, संसर्ग न रखे। वृहदारण्यक वार्तिकसारकारने थोड़े शब्दोंमें इस बातको स्पष्ट कर दिया है—

उपास्यमाना सा देवैस्तत्पापं ध्यानवर्जिते।
जने तदीये देशे च न्यक्षिपत्तौ विवर्जयेत्॥ ८७॥

श्रुतिके परिभयार्थक 'नेत्' शब्दका आशय यह है कि केवल प्राणोपासक ही नहीं, अपितु सर्वसाधारण जन भी चंडाल आदिके साथ संभाषण करनेसे और उनके निवास स्थानमें जानेसे डरे।

(ग) शतपथका वचन है—"पद्यु वा एतच्छ्मशानं शूद्रः"

शूद्रकमलाकरकारने 'पद्यु' शब्दका अर्थ करते हुए लिखा है—"पद्भ्यां युज्यत इति पद्यु, जङ्गमित्यर्थः।"

(अर्थात् स्वर्णसे सम्बंध रखनेपर सन्यासीको ब्रह्महत्या, आत्महत्या और पुल्कस (चांडाल जाति विशेष) होनेके जो पाप हैं, उनका भागी होना पड़ता है। श्रुतिने 'ब्रह्महा' और 'आत्महा' शब्दके साथ 'पौल्कसं शब्दको रखकर सूचित किया कि ब्रह्महत्यारा और आत्महत्यारेकी तरह पौल्कस भी पाप स्वरूप ही होते हैं।)

१. सा वा एषा देवता, एतासां देवतानां पाप्मानं मृत्युमपहत्य यत्रासां दिशामन्तः तद्गमयाञ्चकार, तत्रासां पाप्मनो विन्यदधात्। (अर्थात् प्राणदेवताने अपने उपासक वाग् आदि देवताओंकी पापरूपी मृत्युको उनसे पृथक् कर दिशाओंके अन्तमें पहुँचा दिया, वहींपर इन देवताओंके पापोंको रख दिया)।

श्रुतिका अर्थ है (शूद्रः) शूद्र (पद्यु) चलता-फिरता (एतत्) अस्पृश्यत्वेन प्रसिद्ध (श्मशानं) श्मशान है। अर्थात् जिस तरह स्थावर श्मशान[२] अस्पृश्य होता है उसी तरह निरवसित शूद्र अस्पृश्य होते हैं।

स्मृतिकारोंने इस श्रुतिका अर्थ करते हुए इस बातका भी निर्देश किया है कि 'सत् शूद्र' और 'असत् शूद्र' के भेदसे शूद्र दो प्रकारके होते हैं—

श्मशानमिव यच्छूद्रं तस्मात्तं परिवर्जयेत्।
सच्छूद्राणां गृहे कुर्वन् तत्पापेन न लिप्येत

(बृ०. पाराशर)

महर्षि पाणिनिने इन दो भेदोंको 'अनिरवसित शूद्र' और 'निरवसित शूद्र' इन शब्दोंसे कहा है—"शूद्राणामनिरवसितानाम् ।२।४।१०।" महर्षि पतंजलिने बतलाया कि जिनके भोजनोच्छिष्ट पात्र किसी संस्कारसे शुद्ध नहीं हो पाते वे 'निरवसित' कहलाते हैं। जैसे, चांडाल और मृतप (श्वपाक)—"यैर्भुक्तं पात्रं संस्कारेणापि न शुद्धयति ते निरवसिताः। न निरवसिताः, अनिरवसिताः, तेषां द्वन्द्वे एकवद् भवति - तत्त्वाय स्कारम्। निरवसितानान्तु—चाण्डालमृतपाः।" निरवसितका सरल पर्यायवाची शब्द है—'बहिष्कृत'; अर्थात् ग्राम-नगरके बाहरी हिस्सेमें रहनेवाले चण्डाल आदि अन्त्यज।

उपर्युक्त शतपथका शूद्र शब्द शूद्रत्वजातिपरक नहीं है, अपितु तीनों वर्णोंसे इतर अर्थमें है और उनमें भी पात्रबहिष्कृत जनका प्रधानतया बोधक है।

(घ) तैत्तिरीय ब्राह्मणने भी अस्पृश्योंके निवास स्थानको अमेध्य माना है और उनके गाँवमें निवास तथा याग आदि अनुष्ठानका निषेध किया है—

तस्मादश्लीलनाम " शिचत्रे। नावस्येत्, न यजेत्। यथा पापाहे कुरुते, तादृगेव तत्। (तैत्ति० ब्रा० १।५।२।६)

२. सभास्थलं श्मशानस्थलमिव (सन्या० उप० ।२।७९)।

म्लेच्छजन जहाँ अधिक हों वह (अश्लीलनाम ॅ् चित्रे) निन्दित स्थान है, उस अश्लील नामक गाँवमें (नावस्येत्) न निवास करे और न (यजेत) याग करे। (यथा) जैसे (पापाहे) निषिद्ध दिनमें (कुरुते) किया हुआ बेकार हो जाता है (ताद्दगेव तत्) इसी तरह निषिद्ध देशमें किया हुआ उपकारक नहीं होता।

अन्त्यजदर्शने।

अशुद्धभूतले मार्गे कुर्यान्नोद्धूलनं व्रती।।४।१०।।

(च) नारदपरिव्राजकोपनिषदने अन्त्यजको व्यवहारानर्ह एवं चण्डाल वाटिकाको त्याज्य सूचित किया है—

"द्वारमन्त्यजमिव...ज्ञातचर देशं चाण्डालमिव"

सन्यासोपनिषदमें ये ही शब्द आये हैं—

द्वारमन्त्यजमिव,...स्पृहां गोमांसमिव, ज्ञातचरदेशं चाण्डाल-वाटिकामिव...।" (२।७६)।

(छ) वेदमें अन्त्यजके लिए 'अन्त' और 'उदन्त्य' शब्दका भी प्रयोग हुआ है। ऐतरेय ब्राह्मणका एक उद्धरण दिया जाता है—

ताननु व्याजहारान्तान् वः प्रजाः भक्षीष्टेति, त एतेऽन्ध्राः, पुण्ड्राः शबराः पुलिन्दा मूतिबा इत्युदन्त्या बहवो भवन्ति वैश्वामित्रा दस्यूनां भूयिष्ठाः। (ऐत० ब्रा० ७।१८)

महर्षि विश्वामित्रने अपनी आज्ञाके उल्लंघन करनेवाले (तान् अनु) पुत्रोंको (व्याजहार) शाप दिया कि (वः प्रजाः !) मेरे पुत्रो, तुम लोग (अन्तान् भक्षीष्ठाः) चण्डाल आदि नीच जातिको प्राप्त हो जाओ[1]। (त एते) शाप पाकर वे लोग (अन्ध्राः पुण्ड्राः शबराः पुलिन्दा मूतिबाः) अन्ध्र आदि पाँच प्रकारकी नीच जातियोंको प्राप्त हो गये (इत्युदन्त्या बहवो भवन्ति) उपर्युक्त पाचों जातियोंसे भी नीच जातिको

(१) (अन्तान् भक्षीष्ठाः) चण्डालादिरूपान् नीचजातिविशेषान् भजताम्। (सायण)।

वे प्राप्त हो गये—"उदन्त्यः=अत्यन्त नीचजाति विशेषः, तत्र भवा उदन्त्याः।" (सायण)

इस श्रुतिमें अन्त्यजोंके नीच और नीचतम जातिका उल्लेख है। शबर; पुलिंद आदि पाँच जातियोंका नाम भी आ गया है। शुक्ल यजुर्वेदके तीसवें अध्यायमें पुल्कस, धोबी, छीपा, चमार, कैवर्त्त, दाश मछुआ, भील, किरात, चंडाल, नट आदि अन्त्यज जातियोंके नाम और कर्मका उल्लेख है—

नदीभ्यः पौञ्जिष्ठम्... ॥८॥ पौञ्जिष्ठम् = पुञ्जिष्ठोऽन्त्यजः, पुल्कसः तदपत्यम्। (भाष्य)।...मेधाय वासःपल्पूलीं, प्रकामाय रजयित्रीम् ॥१२॥ वाससां प्रक्षालनकर्तारं, पल्पूल-प्रक्षालनच्छेदनयोः। (भाष्य)। ...साध्येभ्यश्चर्मम्नम ॥१५॥ सरोभ्यो धीवरमुपस्थावराभ्यो दाशं नड्वलाभ्यः शौष्कलम्...स्वनेभ्यः पर्णकं गुहाभ्यः किरातम्... ॥१६॥ धैवरं = कैवर्तापत्यम्, शौष्कलम् = मत्स्यजीविनम्, पर्णकम् = भिल्लम् (भाष्य)। वायवे चाण्डालमन्तरिक्षाय वंशनर्तिनम् ॥२१॥

(यजुर्वेद अ० ३०)

उपर्युक्त मंत्रोंमें अन्त्यजोंके जो नाम आये हैं उनमें अधिकांशका अत्रि आदि स्मृतियोंमें उल्लेख मिलता है—

रजकश्चर्मकारश्च नटो बुरुड एव च।
कैवर्तमेदभिल्लाश्च सप्तैते चान्त्यजाः स्मृताः॥

(अत्रिस्मृति, यमस्मृति, अंगिरास्मृति)

अर्थात् धोबी, चमार, नट, चंडाल, कैवर्त, मेद और भील ये सात अन्त्यज हैं। व्यास स्मृतिने तेरह अन्त्यजोंके नामका उल्लेख किया है—

चर्मकारो भटो भिल्लो रजकः पुस्करो नटः।
वराटो मेदचाण्डालौ दाशश्वपचकोलिकाः॥
एतेऽन्त्यजाः समाख्याता ये चान्ये च गवाशनाः।
तेषां सम्भाषणात् स्नानं दर्शनादर्कवीक्षणम्॥

(व्यास स्मृति ११)

अर्थात् चमार, भट, भील, धोबी पुस्कर, नट, वराट, मेद, चाण्डाल, दाश, श्वपच, कोलिक और गौ खानेवाले अन्त्यज कहे जाते हैं। उनके साथ संभाषण करनेसे स्नान करना चाहिए और देखनेसे सूर्यका अवलोकन करना चाहिए।

स्कन्द पुराणने, चंडाल, पुल्कस, म्लेच्छ, श्वपाक और पतितको पंच महापातकी की तरह माना है तथा उनकी वर्ण और आश्रमसे बहिःस्थिति बतलायी है—

चाण्डालः पुल्कसो म्लेच्छः श्वपाकः पतितस्तथा।
एते पञ्च समाख्याताः पञ्चपातकिनां समाः॥
वर्णानामाश्रमाणाञ्च सर्वदा तु बहिःस्थितिः।

श्रुतिने इस विषयका थोड़े ही शब्दोंमें प्रतिपादन कर दिया है—

न शूद्र-स्त्री-पतितोदक्यासंभाषणम्।

(सन्या० उप० २।५९)।

सन्यासियोंके लिए सामान्यतया स्त्रियोंसे बातचीत निषिद्ध है। इसलिए श्रुतिमें स्त्री शब्द पृथक् पढ़ा गया है। इसका अर्थ यह है कि शूद्र, स्त्री, पतित, और रजस्वलासे संभाषण नहीं करना चाहिए। इस श्रुतिमें तीनों प्रकारकी अस्पृश्यताकी बात आ गयी है। शूद्र शब्दसे योनिज अस्पृश्यताकी, पतित शब्दसे कर्मज अस्पृश्यताकी तथा रजस्वला शब्दसे कालज अस्पृश्यताकी बात पकड़ी गयी है। इन तीन प्रकारकी अस्पृश्यताओंमें कौन अधिक त्याज्य है और कौन कम इस तारतम्यपर भी महर्षियोंने प्रकाश डाला है। बृहस्पति स्मृतिने तथा कलियुगमें विशेष सम्माननीय पराशर स्मृतिने लिखा है—

युगं युगद्वयं चैव त्रियुगं च चतुर्युगम्।
चाण्डालसूतिकोदक्यापतितानामधः क्रमात्॥

(पराशर स्मृति अ० १२।५२)

छः पादकी लम्बाई वाले दंडको युग कहा जाता है। इस श्लोकका

तात्पर्य यह है कि चार युगकी दूरीसे चंडालका स्पर्श बचाना चाहिए, प्रसूता स्त्रीका तीन युगकी दूरीसे, रजस्वलाका दो युगकी दूरीसे तथा पतितोंका एक युगकी दूरीसे बचाना चाहिए।

इस तरह अस्पृश्योंका स्पर्श निषिद्ध ठहरता है और निषिद्ध वस्तुका आचरण मानव जीवनको लक्ष्य भ्रष्ट कर देता है। अतः शास्त्रकारोंने अनजानमें हुए स्पर्शके लिए स्नानरूप प्रायश्चित्तकी व्यवस्था दी है। और इस बातके लिए भी सावधान कर दिया है कि यदि विना स्नान किये जलपान आदि कर लिया जाय तो दोहरा पाप लद जाता है; और तब प्रायश्चित्तकी व्यवस्था और भी कड़ी पड़ जाती है—

चाण्डालेन यदा स्पृष्टो द्विजवर्णः कदाचन।
अनभ्युक्ष्य पिवेत् तोयं प्रायश्चित्तं कथं भवेत्॥
ब्राह्मणस्तु त्रिरात्रेण पञ्चगव्येन शुद्धयति।
क्षत्रियस्तु द्विरात्रेण पञ्चगव्येन शुद्धयति॥
अहोरात्रेण वैश्यस्तु पञ्चगव्येन शुद्धयति।
चतुर्थस्य तु वर्णस्य प्रायश्चित्तं कथं भवेत॥
व्रतं नास्ति तपो नास्ति होमो नैव च विद्यते।
पञ्चगव्यं न दातव्यं तस्य मन्त्रविवर्जनात्॥
ख्यापयित्वा द्विजानां तु शूद्रो दानेन शुद्धयति।
(आपस्तम्ब स्मृति १—४)।

यदि कदाचित द्विज वर्णको चाण्डाल स्पर्श कर ले और वह स्नान किये बिना ही जल पी ले तो प्रायश्चित्तका स्वरूप क्या है? ॥१॥ ब्राह्मण तीन दिनोंमे और क्षत्रिय दो दिनोंमें उपवास कर पञ्चगव्य पीनेसे शुद्ध होता है। वैश्य एक अहोरात्र (दिन-रात) उपवासकर पञ्चगव्य पीनेसे शुद्ध हो जाता है। शूद्रके सम्बन्धमें विशेष बात यह है कि व्रत, तप, होममें अधिकार न रहनेसे उसे पञ्चगव्य नहीं देना चाहिए। शूद्र अपने अपराधको ब्राह्मणोंको बतलाकर यथाशक्ति दान देनेसे शुद्ध हो जाता है।

स्पर्शके बाद विना स्नान किये लघुशंका आदि कृत्योंका भी निषेध किया गया है। यम स्मृतिमें बतलाया गया है कि जो द्विज चाण्डाल और श्वपचसे छू जानेके बाद लघुशंका और शौच करता है तो इसके प्रायश्चित्त स्वरूप तीन दिन उपवास करे। और जूठे मुख छू जाय तो छः दिन उपवास करे—

चाण्डालैः श्वपचैः स्पृष्टो विण्मूत्रे च कृते द्विजः।
त्रिरात्रं तु प्रकुर्वीत भुक्तोच्छिष्टः षडाचरेत्॥

(यमस्मृति १०)

यह तो स्पर्शकी बात हुई। उनके साथ गमन, खान-पान अथवा घरमें प्रविष्ट हो जानेपर प्रायश्चित्तका क्रम और अधिक बढ़ जाता है, तब तो पराक जैसे कठिन प्रायश्चित्तके चक्करमें पड़ जाना पड़ता है—

सर्वान्त्यजानां गमने भोजने संप्रवेशने।
पराकेन विशुद्धिः स्याद् भगवानत्रिरब्रवीत्॥

(अत्रिस्मृ० १७३)

उपर्युक्त श्रुति वचनोंसे अस्पृश्यताकी बात सुस्थित हो जाती है और यह भी स्पष्ट हो जाता है कि उपर्युक्त स्मृति सूत्र, एवं आगमके वचन श्रुतिमूलक ही हैं।

तीसरा अध्याय

प्रवेश प्रतिपादक पुस्तकोंकी आलोचना

पिछले अध्यायमें यह दिखाया जा चुका है कि शास्त्र मंदिर प्रवेशके पक्षमें नहीं हैं। किन्तु कुछ पुस्तकोंका दावा है कि हरिजन मंदिर प्रवेश सर्वथा शास्त्र सम्मत है। ऐसी तीन पुस्तकें मेरे सामने हैं। उनके नाम हैं—'हरिजन-स्मृति', 'हरिजन मंदिर प्रवेश' और 'मन्दिर प्रवेश, (वेद-शास्त्र पुराणके अनुसार सर्वथा उचित)'। हरिजनस्मृतिकी रचना

म० म० पंडितराज गोपाल शास्त्री दर्शन केसरी जीने की है। 'हरिजन मन्दिर प्रवेश' में 'हरिजन-स्मृति' के ही वचन दोहराये गये हैं। केवल कुछ तर्क उसके अपने हैं। 'मन्दिर प्रवेश (वेद-शास्त्र पुराणके अनुसार सर्वथा उचित)' श्री जे० पी चौधरी काव्यतीर्थ जी कृति है। इस पुस्तकमें लिखा गया है—"श्रीकरपात्री जीको इसके लेखबद्ध उत्तरके लिए चैलेञ्ज"! किन्तु यह पुस्तक नयी नहीं है। पुरानी पुस्तकको ही श्रीस्वामी करपात्री जीके चैलेंजके रूपमें फिरसे छपा दी गयी है। क्योंकि बाईस वर्ष पहले ही मानस-राजहंस श्री विजयानन्द जी त्रिपाठी साहित्य रंजनने इस पुस्तकका उत्तर दे दिया था। फिर भी श्री चौधरी जीने "किसीने उसका (मेरी पुस्तकका) निराकरण नहीं किया था" (पृ० १) ऐसा कैसे लिख दिया यह समझमें नहीं आता। मानस राजहंस जीकी पुस्तकका नाम है—'मन्दिर प्रवेश मीमांसा।' श्री चौधरी जीको चाहिए था कि पहले वे श्री मानस-राजहंस जीकी समीक्षाका उत्तर दे देते तब अपनी पुस्तकका नया संस्करण करवाते। जिन प्रश्नोंका उत्तर हो चुका हो उन्हीं प्रश्नोंको फिर चैलेंजके रूपमें रखना अच्छा नहीं है।

प्रसन्नताकी बात है कि लेखक महोदय एवं प्रवेश न चाहने वाले दोनों सत्य सिद्धान्तको माननेके लिये तैयार हैं, और प्रस्तुत प्रश्नको परखनेके लिए शास्त्रको ही कसौटी मानते हैं। कसौटी जब सच्ची है और दोनों ही पक्ष जब इसका निर्णय माननेको तैयार हैं तब सत्यको निखरते देर ही कितनी लगेगी?

मंदिरका प्रस्तर लेख प्रवेशके विपक्षमें

अब इन पुस्तकोंके उन तर्कों और वचनोंपर विचार प्रस्तुत किया जाता है जिन्हें प्रवेशके पक्षमें उपस्थित किया गया है। "हरिजन मन्दिर प्रवेश" ने लिखा—"जब मन्दिरके फाटक पर लिखा हुआ है कि 'आर्य धर्मेतराणां प्रवेशो निषिद्धः' तो विरोधी दल यह सिद्ध करे कि हरिजन आर्य (शूद्र) नहीं हैं।" (पृ० ३)।

श्री बाबा राघव दासने कहाथा—"विश्वनाथ मन्दिर सार्वजनिक है। ......विश्वनाथ मन्दिरके प्रवेश द्वारपर लिखा है कि इसमें अनार्योंका प्रवेश निषिद्ध है। इसका अर्थ होता है कि जो चारों वर्णोंसे बाहर हैं उनका प्रवेश मना है।" (आज २० अक्टूबर)।

मन्दिरके फाटकपर जो लेख है उसके शब्द ध्यान देने योग्य हैं! वहाँ 'आर्येतरेषां' न लिखकर, 'आर्यधर्मेतराणां प्रवेशो निषिद्धः' लिखा है। इसका तात्पर्य यह है कि आर्यधर्म जिसे अनधिकारी बतलाये उसका प्रवेश निषिद्ध है। 'आर्यसे इतर' इस मन्दिरमें न जाएँ ऐसा अर्थ करना उचित नहीं है। एक तो यहाँ 'आर्येतराणां' यह शब्द नहीं है। और होता भी तो 'आर्यसे इतर' इस अर्थमें यह शब्द बनता भी नहीं। क्योंकि इस पदमें प्रविष्ट इतर शब्द सर्वनाम है। अतः 'आर्यसे इतर' इस अर्थमें 'आर्येतरेषां' हो जाता। सर्वनाम संज्ञाका निषेध दो ही दशाओंमें हो सकता है। या तो यह पद उपसर्जनीभूत हो या यहाँ द्वन्द्व समास हो। द्वन्द्वका यहाँ अवकाश नहीं है। अतः 'आर्यधर्मेतराणाम्' में बहुव्रीहि समास ही करना पड़ता है। तब अर्थ यह होता है कि 'आर्य धर्म है इतर जिनका उनका प्रवेश निषिद्ध है।' किसी विद्वानने गागरमें सागर भरनेके लिए ही पदोंकी ऐसी योजना की है। इससे यह सिद्ध हुआ कि जिस तरह म्लेच्छ आदिके लिए आर्यधर्म इतर है उसी तरह उस ब्राह्मणके लिए भी यह धर्म इतर ही हो जायगा जो धर्मशास्त्र निषिद्ध आशौच आदि अवस्थामें घुसना चाहेगा। इसी तरह पतित, प्रायश्चित्ती चारो वर्ण, रजस्वला तथा प्रसूता स्त्रियाँ और अन्तर प्रभव जातियाँ भी यदि शास्त्रको न मान मन्दिरमें घुसना चाहेंगे तो वे भी 'आर्यधर्मेतर' करार कर दिये जायेंगे और उनका भी प्रवेश निषिद्ध हो जायगा। ऋग्वेदके "प्रार्येवर्ण" ३।३४।६

इस मन्त्रमें सायणने आर्य शब्दका त्रैवर्णिक अर्थ किया है।

मन्दिर उपासनाका स्थान है, रेलकी तरह कोई सार्वजनिक चीज

नहीं। यह बात तो आपकी उद्धृत पंक्तियोंसे भी स्पष्ट है। रेल सार्वजनिक चीज है। अतः आर्य-अनार्य किसीके लिए इसमें कोई रोक टोक नहीं रहता। वैसी सार्वजनिकता मन्दिरमें कहाँ है? जैसा कि ऊपर दिखलाया जा चुका है, प्रस्तर लेखका केवल इतना ही अर्थ नहीं है 'इसमें अनार्योंका प्रवेश निषिद्ध है' उसके व्यापक अर्थसे रजस्वला, प्रसूता, पतित और अशौचावस्थामें पड़े किसी द्विजातिका मन्दिरमें जाना निषिद्ध ठहरता है।

एक भी उद्धृत वचन प्रवेशका प्रतिपादक नहीं

येऽर्चयन्ति शिवं नित्यं लिङ्गरूपिणमेव च।
स्त्रियो वाऽप्यथवा शूद्राः श्वपचास्त्वन्तवासिनः॥
तं शिवं प्राप्नुयुरन्ते सर्वदुःखोपनाशनम्।

(स्कन्द पु० पा० के० ८ श्लोक १६)

स्त्री, शूद्र और चाण्डाल, हरिजन, कोई भी लिङ्गरूपमें यदि शिवकी पूजा करता है तो वह अन्तमें शिवजीको सालोक्य मुक्तिद्वारा प्राप्त करता है।"

(हरिजन-स्मृति पृष्ठ ३४)।

श्लोकमें 'अर्चयन्ति' यह पद णयन्त है। इसका अर्थ है—ब्राह्मणके द्वारा पूजन कराना। अन्त्यज मंदिरमें जाकर स्वयं पूजन नहीं कर सकते, ब्राह्मणके द्वारा तो करा ही सकते हैं। दूसरी बात यह है कि अन्त्यज भाइयोंके लिए दर्शन और पूजनका निषेध नहीं है। किन्तु अधिकार भेदसे दर्शन और पूजनमें भिन्नता अवश्य आ जाती है। यहाँ दर्शन और पूजन पदार्थका विवेक आवश्यक है। स्कन्द पुराणान्तर्गत सूत संहितामें स्पष्ट शब्दोंमें लिखा गया है कि सन्यासी ओंकारसे, स्त्री और शूद्र ओंकार रहित 'शिवाय नमः' इस मन्त्रसे शंकरकी पूजा करें। तथा अन्त्यज भाइयोंके लिए मन्दिरके दर्शनकर प्रणाम करना ही पूजा है—

सन्यासी देवदेवेशं प्रणवेनैव पूजयेत्।
नमोन्तेन शिवेनैव स्त्रीणां पूजा विधीयते॥

विरक्तानां च शूद्राणामेवं पूजा प्रकीर्तिता।
अन्येषामपि सर्वेषां नराणां मुनिपुङ्गवाः॥
पूजा देवालयं दृष्ट्वा प्रणामस्तस्य कीर्तिता।
(सूत सं० शिवमा० खं० अ० ४। १४-१६)।

विद्यारण्य स्वामीने यही अर्थ किया है—"अन्येषामिति शंकरजातीनां देवालयं दृष्ट्वा तस्य देवालयस्य प्रणाम एव पूजा।"

अर्थमें खींचातानी

किन्तु आपको उपर्युक्त अर्थ मान्य नहीं है। अर्थ बदलने लिए आपने बहुत ही खींचातानी की है। आपके शब्दोंमें—"इन श्लोकों में अन्त्यजों स्त्री, विरक्त और शूद्रोंके लिए जिनमें (शूद्राणां तु सधर्माणः सर्वेऽपध्वंसजाः स्मृताः) इस मनु महराजकी आज्ञासे अवान्तर जातियाँ (हरिजन इत्यादि) शामिल हैं; क्रमशः प्रणवसे तथा नमः शब्दान्त शिव मन्त्रसे अर्थात् 'नमः शिवाय' इस मन्त्रसे पूजा करना बताकर उनके अतिरिक्त जो सवर्ण द्विज हैं उनके लिए विशेष विधानकी आवश्यकता नहीं, उनके लिए देवालय, शिवलिंगका पूजन और प्रणाम जैसा वे करेंगे वैसा मैने "कीर्तितः" कह दिया है। ... इसमें हरिजनोंका नाम भी नहीं बल्कि द्विजोंके लिए यह विधान है।" (हरिजन-स्मृति पृ० ४४)।

आपने यह जो लिखा कि 'नमः शब्दान्त शिव मंत्रसे अर्थात् नमः शिवाय इस मन्त्रसे पूजा करना' वह ठीक नहीं। नमः शब्दान्त शिवमंत्र 'शिवाय नमः' होता है; न कि 'नमः शिवाय।' अतः शूद्र भाइयोंको 'शिवाय नमः' अथवा मतान्तरसे 'नमः शिवाय नमः' यही जपना चाहिए।

मनु महराजकी 'शूद्राणां च सधर्माणः सर्वेऽपध्वंसजाःस्मृताः' इस आज्ञाका यह तात्पर्य नहीं है कि शूद्रोंके लिए कथित सभी बातें अन्त्यजों पर भी ठीक उसी रूपमें लागू होंगी। आपका यह कथन स्वयं मनु-स्मृतिके विरुद्ध है। मनुके मतसे सच्छूद्र 'अस्पृश्य' एवं 'अपात्र' नहीं हैं। किन्तु चाण्डाल आदि प्रतिलोमजोंको उन्होंने 'अस्पृश्य' एवं

'अपात्र' माना है। 'न तैः समयमन्विच्छेत् (मनु १०।५३) कहकर मनुने इस बातका विधान किया है कि धर्मानुष्ठानके समय उनकी संगति और उनसे संभाषण आदि न करे। 'अपपात्राश्च कर्तव्याः (१०।५१) कहकर यह भी बतला दिया है कि उनसे स्पृष्ट पात्रके स्पर्शसे भी बचना चाहिए—अपपात्राः पात्राद् बहिर्भूतास्तैः स्पृष्टपात्रादि न स्पृश्यमित्यर्थः। (सर्वज्ञ नारायण)

वस्तुस्थिति समझनेके लिए मनुका पूरा श्लोक लिख दिया जाता है। दसवें अध्यायमें ब्राह्मण आदि जातियोंकी परिभाषा बतला देनेके बाद छठे श्लोकसे उनचालीसवें श्लोक तक उन्होंने अनुलोम और प्रतिलोम संकरोंका वर्णन किया। इसके बाद ४१ वें श्लोकमें उन्होंने उन संकरोंके कर्तव्यका निर्देश किया—

सजातिजाऽनन्तरजाः षट् सुता द्विजधर्मिणः।
शूद्राणान्तु सधर्माणः सर्वेऽपध्वंसजाः स्मृताः॥ (मनु १०।४१)

अर्थात् ब्राह्मणसे ब्राह्मणी, क्षत्रिया एवं वैश्यामें उत्पन्न ये तीन तरहके पुत्र, क्षत्रियसे क्षत्रिया एवं वैश्यामें उत्पन्न ये दो तरहके पुत्र तथा वैश्यसे वैश्यामें उत्पन्न पुत्र इस तरह छः प्रकारके पुत्र उपनयन आदि द्विजाति धर्मोंके अधिकारी होते हैं। इस तरह इन अनुलोमजोंके लिए उपनयन आदि द्विजाति धर्मोंके विधान करनेके बाद मनु महराजने शूद्रसे उत्पन्न तथा कुछ प्रतिलोमज संकरोंके लिए यह स्पष्टकर देना आवश्यक समझा कि उनमें द्विज धर्मता न रहकर शूद्र सधर्मता ही रहती है। अर्थात् उपर्युक्त छः तरहकी सन्ततियोंके अतिरिक्त कोई भी सन्तति उपनयनादिके अधिकारी नहीं रह जाती। इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि सच्छूद्र मन्दिरमें जाते हैं तो अस्पृश्य भी मन्दिरमें प्रवेश करें ही।

इसी तरह आपने 'अन्येषामपि सर्वेषां' का जो 'शूद्र आदिसे अतिरिक्त सवर्ण द्विज' अर्थ किया है वह विद्यारण्य स्वामीके अर्थ विरुद्ध,

प्रकरण विरुद्ध तथा सन्दर्भ विरुद्ध भी है। विद्यारण्य स्वामीके शब्द ऊपर उद्धृत किये गये हैं। सूत संहिताके शिव महात्म्य खण्डके चौथे अध्यायके प्रारम्भमें पूजन विधिका प्रतिपादन किया गया है। तीसरे श्लोकसे बारहवें श्लोक तक संक्षेपसे पूजन विधिका प्रतिपादन कर सूत संहिताने अधिकारी भेदसे पूजाका भेद बतलाना अत्यन्त आवश्यक समझा। क्योंकि अपने अधिकार प्राप्त विधिका ज्ञान न रहने पर दूसरोंकी पद्धतिके अनुसार की गयी पूजा उलटे पतनका कारण बन बैठती है। अतः बारहवें श्लोकके बाद सूत संहिताने लिखा—

ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थश्च सुव्रताः।
एवं दिने-दिने देवं पूजयेदम्बिकापतिम्॥
सन्यासी देवदेवेशं प्रणवेनैव पूजयेत्।

इस तरह आश्रम भेदसे पूजाका भेद बतलाकर पंचाक्षर पूजामें स्त्री और शूद्रके लिए विशेष बात बतलाते हैं—

नमोऽन्तेन शिवेनैव स्त्रीणां पूजा विधीयते॥
विरक्तानाञ्च शूद्राणामेवं पूजा प्रकीर्तिता।
अन्येषामपि सर्वेषां नराणां मुनिपुङ्गवाः॥
पूजा देवालयं दृष्ट्वा प्रणामस्तस्य कीर्तिता।

इस तरह चौथे अध्यायके तीसरे श्लोकसे सोलहवें श्लोक तकका विषय निर्दिष्ट कर दिया गया। अब देखना यह है कि अधिकारी भेद निरूपणसे पूजाभेद निरूपणके पहले, तीसरे श्लोकसे बारहवें श्लोकतक, जो पूजाका विधान बतलाया गया है वह किनके लिए? मनु जीने तो पहले ही घोषित कर रखा है कि शास्त्र द्विजातियोंके लिए है। फिर भी सूतसंहिताने सर्वथा भ्रान्ति निराशके लिए 'श्रुतिस्मृत्युदितं कर्म कृत्वा श्रद्धापुरःसरम्' लिखकर यह सूचित कर दिया कि है कि पूजाके ये विधान द्विजातियोंके लिए हैं।

द्विजातियोंमें भी ब्रह्मचारी, गृहस्थ और वनस्थके लिए ही। अब

बचे सन्यासी, शूद्र, स्त्री और अन्तर प्रभव जातियाँ। अतः उनके लिए भिन्न-भिन्न पूजाकी व्यवस्था दे दी गयी। सन्यासी, स्त्री और शूद्रकी व्यवस्था दे देनेके बाद 'अन्येषामपि सर्वेषां' से अन्तर प्रभव जातियाँ ही सुतरां गृहीत होती हैं। यही प्रक्रान्त अर्थ है।

'अन्येषां' का सवर्ण द्विज अर्थ करनेपर तो शब्दोंकी संगति ही नहीं लगायी जा सकती। आपको देवालयका अर्थ शिवलिंग करना पड़ा। तथा 'था' 'याद्दक्' 'च' आदि शब्दोंका अध्याहार करना पड़ा।

सूत संहिताने इन श्लोकोंके बाद एक सत्य घटना प्रस्तुतकर अपना अभिप्राय बिलकुल स्पष्ट कर दिया है। एक पतित चाण्डाल और एक पतित ब्राह्मणको अपने-अपने पापोंसे घृणा हुई। दोनोंने शंकरकी शरण ली। दोनोंकी पूजा उनके अधिकारके अनुसार थी। ब्राह्मणने प्रायश्चित्त-कर मन्दिरमें प्रवेशकर मूर्तिकी पूजा प्रारंभ की, और जानकार चण्डालने अपने जाति प्राप्त अधिकारके अनुसार मन्दिरसे बाहर रहकर दभ्र सभाका नमस्कार रूप पूजन प्रारम्भ किया—

दूरे दृष्ट्वा नमस्कृत्वा पञ्चक्रोशाद् बहिर्द्विजाः!
उवास सुचिरं कालमेवं कृत्वा दिने-दिने ॥

दोनोंको स्वर्ग मिला और दोनों वहाँका फल भोगकर मुक्त हो गये। दोनोंके कर्त्तव्य दो थे। पुल्कस दभ्र सभाका प्रणाम[1] और मन्दिरकी रक्षा[2] का काम करता था तथा ब्राह्मण शिवलिंगकी पूजा करता था। किन्तु दोनोंको एक ही फल मिला। यदि चंडाल मोहमें पड़कर मंदिरमें घुस पड़ता तब स्वर्ग और अपवर्ग तो दूर ही रहते, बेचारेपर उलटे प्रायश्चित्त चढ़ बैठता?

---

१. दृष्ट्वा दभ्रसभां दूरे प्रणम्य भुवि दण्डवत्।
२. (क) स्थानस्यास्य भये जाते रक्षणं कुरु यत्नतः।
(ख) स्थानसंरक्षणव्याजात् तत्रैव मरणं गतः।

वस्तुतः पूर्व श्लोकोंकी तरह 'अन्येषामपि सर्वेषां' श्लोकमें भी उद्देश्य विधेय भाव ही रखना उचित है। यही प्रक्रान्त है। 'देवालयं दृष्ट्वा तस्य प्रणाम.' उद्देश्य है तथा 'पूजा' विधेय है। इस पद्यमें 'दृष्ट्वा' पदका स्वारसिक अर्थ भी निकता है। 'लिंगं दृष्ट्वा पूजा' ऐसा अर्थ करने पर यह बात नहीं रहती।

पार्थिव लिंगकी पूजा कर सकते हैं

हरिजन-स्मृति' और 'हरिजन मंदिर प्रवेश'ने लिखा है—

शूद्रो वा यदि वा विप्रो म्लेच्छो वा पापकृन्नरः।
शिव-दीक्षा-समोपेतः पुष्पमेकं तु यो न्यसेत्॥
षड्क्षरेण मन्त्रेण लिङ्गस्योपरि भक्तितः।
सतां गतिमवाप्नोति यां यां यान्तीह यज्विनः॥

(स्कन्द पु० नागर खण्ड अ० २६४ श्लोक २५।२६)

शूद्र, म्लेच्छ, पापी, विप्र दीक्षित होकर षडक्षर द्वारा शिव लिंग पर पुष्प चढ़ा दे तो वह सद्गतिको प्राप्त हो—

(हरिजनस्मृति पृ० ५०)

पहली बात यह है कि ये वचन लिखे संकेतके अनुसार स्कन्द पुराणमें नहीं हैं। यदि हों भी तो इनसे यह सिद्ध नहीं किया जा सकता कि 'अन्त्यज भाई मन्दिरमें जाया करें।' क्योंकि इसी स्कन्द पुराणने अन्त्यज भाइयोंके लिए पूजा और जपकी जो पृथक् व्यवस्था की है उससे तथा अन्य शास्त्रोंसे इन वचनोंका विरोध हो जायगा। शूद्र आदिके लिए पार्थिव लिंगकी पूजा विहित है। शिव-शिव, राम-राम आदि नाम मन्त्रसे अन्त्यज भाई भी फूल चढ़ा सकते हैं। किन्तु प्रतिष्ठित लिंग और मूर्तिका स्पर्श करना उनके लिए निषिद्ध है—

यदा प्रतिष्ठितं लिंगं वेदविद्भिर्यथाविधि।
तदा प्रभृति शूद्रश्च योषिच्चापि न संस्पृशेत्॥

अर्थात् वेदवेत्ताओंके द्वारा प्रतिष्ठा विधिके अनुसार लिंगकी प्राण

प्रतिष्ठाकर देनेके बाद शूद्र और स्त्री भी उसका स्पर्श न करें। 'अपि' शब्द बतलाता है कि जब शूद्र और स्त्री भी नहीं छू सकते तब अन्त्यजोंके लिए कहना ही क्या है।

प्रवेश-प्रतिरोध दुर्बल नहीं

हरिजन स्मृतिने लिखा "कोई साक्षात् वचन हमारे धर्मशास्त्राचार्य महर्षियोंने नहीं दिखाया है, जिसमें हरिजनोंका साक्षात् मन्दिर प्रवेश निषिद्ध बताया हो। हाँ, कुछ दिनोंसे परम्परागत रूढि चली आती है कि हरिजन मन्दिरमें प्रवेश न करें। पर यदि मीमांसा पद्धतिसे देखा जाय तो यह ठीक नहीं हैं, क्योंकि हरिजनोंका मन्दिर-प्रवेश देवपूजनके उद्देश्यसे शास्त्रोंमें विहित पाया जाता है। इस हालतमें साक्षात् शास्त्र वचनोंसे प्राप्त हरिजनोंका मन्दिर प्रवेश सदाचारमूलक लिंग द्वारा कल्पित (श्रुति वचनोंसे प्राप्त मन्दिर प्रवेश निषेधको अवश्य बाध कर देगा।" (पृष्ठ ३१)।

उपर्युक्त उद्धरणोंसे अन्त्यजका मन्दिर प्रवेश और विग्रहस्पर्श हानिकर सिद्ध हो चुके हैं। आपका यह कथन कि 'हरिजनोंका मन्दिर प्रवेश श्रुति सिद्ध है और प्रतिरोध लिंगसिद्ध' यह भी ठीक नहीं ठहरता। एक तो आपने प्रवेशके पक्षमें एक भी निरपेक्ष वचन प्रस्तुत नहीं किया जिसे श्रुति कहा जाय। दूसरे, परम्परागत रूढ़िको लिंग मानना मीमांसाकी पद्धतिके प्रतिकूल है। अर्थ-प्रकाशन-सामर्थ्यको 'लिंग' कहा जाता है, न कि शास्त्र विरहित परम्पराको। 'ऐन्द्रया गार्हपत्यमुपतिष्ठते' इस वचनमें 'गार्हपत्यंमें' द्वितीया श्रुति है। अतः गार्हपत्याग्निकर्मक उपस्थान प्राप्त होता है। और 'इन्द्रो देवता अस्या' इस विग्रहमें विहित तद्धित अण् प्रत्ययमें वज्रहस्त देवताका प्रकाशन सामर्थ्य है। इसलिए 'ऐन्द्रया' से वज्र हस्त देवता कर्मक उपस्थान प्राप्त होता है। ऐसी स्थितिमें 'श्रुति-लिंग-वाक्य-प्रकरण-स्थान-समाख्यानां समवाये पारदौर्बल्यमर्थविप्रकर्षात्' नियमसे श्रुतिसे लिंगका बाध हो जाता है। किन्तु प्रकृतमें मन्दिर प्रवेश प्रति

पादक न तो कोई श्रुति है और न प्रतिरोध केवल सदाचार द्वारा कल्पित ही। इसलिए मीमांसाकी पद्धति प्रवेशके विपक्षमें ही है।

ज्योतिर्लिंगका भी स्पर्श निषिद्ध है

हरिजन स्मृतिने लिखा—"अब देखिए उन वचनोंको जिनमें साक्षात् रूपसे चांडालों (हरिजनों) का देवदर्शन विधान है—

हीनयोनौ यदा जातो ज्योतिर्लिंगं च पश्यति।
तस्य जन्म भवेत्तत्र विमले सत्कुले पुनः॥
म्लेच्छो वाप्यन्त्यजो वापि षण्ढो वापि मुनीश्वराः।
द्विजो भूत्वा भवेन्मुक्तस्तस्मात्तद्दर्शनं चरेत्॥

(शि० पु० को० सं० २।३१-३२, हरिजन स्मृति पृ० ३२)

'हरिजन मन्दिर प्रवेश' ने इनका अर्थ यह लिखा है—"हीन योनि (अन्त्यजादि) शूद्र, म्लेच्छ, चण्डाल तथा नपुंसक आदि यदि ज्योतिर्लिंगका दर्शन कर ले उसका जन्म सम्पन्न कुलमें होता है। तथा इसी जन्ममें वह (शूद्रादि) द्विज (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) हो जाता है।"

पहली बात यह है कि दोनों पुस्तकोंमें श्लोकके हुलिया देनेमें चालाकी की गयी है। कोटि रुद्र संहिताके पहले अध्यायमें ये श्लोक आये हैं। उपर्युक्त श्लोकोंकी संख्या ३१-३२ न होकर ३१-३३ है। बीचमें ३२ वाँ श्लोक छिपा लिया गया है। यह श्लोक है—

सत्कुले जन्म संप्राप्य धनाढ्यो वेदपारगः।
शुभं कर्म तदा कृत्वा मुक्तिं यात्यनपायिनीम्॥

इस श्लोकको इसलिए छिपाया गया कि 'सत्कुले पुनः' 'द्विजो भूत्वा' का 'इसी जन्ममें शूद्रादि ब्राह्मण हो जाता है' ऐसा अर्थ जबरन् ठहराया जा सके और कर्मणा वर्ण स्थापित कर सनातन सभ्यताकी जड़ ही काट डाली जाय। अस्तु।

प्रकृतमें इस वचनसे इतना ही आता है कि अन्त्यज भाई भी ज्योतिर्लिंगके दर्शन कर सकते हैं, बस। इनसे यह कैसे सिद्ध हो गया

कि मन्दिर प्रवेश निषिद्ध नहीं है? यह तो हमलोग चाहते ही हैं कि अन्त्यज भाई भी दर्शन-पूजन किया करें। उनके दर्शन पूजनके लिए भला कौन रोक लगाता है? हमारा कहना केवल इतना ही है कि दर्शन पूजनके नामपर उनसे पाप न बन जाय? तरुण शिष्य और पुत्रके लिए नारी-पूजा विहित है। किन्तु वह पूजा उनके अधिकारके अनुरूप ही होनी चाहिए। यदि कोई तरुण शिष्य, पुत्र, देवर और भाई समानाधिकारका दावा लेकर बहूकी-अंग मर्दन, उबटन लगाना बाल गूंथना आदि-पूजा पद्धतिके लिए हठ करे तो उनके हितैषियोंका क्या यह कर्तव्य नहीं है कि उन्हें उस पूजासे रोकें? यदि उस समय उन प्रतिरोधियोंपर कोई उदार व्यक्ति अभियोग लगाये कि ये अनुदार हैं, शिष्य आदिकी उन्नति देखना नहीं चाहते; अथवा कोई पंडित नारी पूजा प्रतिपादक सामान्य शास्त्र वचनोंको लेकर यह सिद्ध करना चाहे कि शास्त्रोंमें नारी पूजा लिखा है ये लोग रुढिवादितावश अंग मर्दनादि क्रिया नहीं करने देते, तो क्या यह मान्य होता? शास्त्रोंमें अन्त्यज भाइयोंके लिए मन्दिरको प्रणाम करना पूजा तथा गोपुर और शिवालयके दर्शनको ही देव दर्शन माना है तथा मन्दिर प्रवेशका प्रतिरोध किया है। शास्त्रके विरुद्ध चलनेसे किसीका हित नहीं हो सकता। आपने जो 'लिङ्गं शिवालयो ज्ञेयं देवदेवस्य शूलिनः' (हरिजन स्मृति, पृ० ४५) वचन दिया दिया है उसका 'प्रासाद-गर्भ-पीठार्चाः शरीरत्वेन शार्ङ्गिणः। कल्पिताः......(विष्णु संहिता प० २५।२) इस वचनके अनुसार अर्थ यह होगा कि शिवालय ही लिंग है। अतः 'ज्योतिर्लिंगं च

१. हरिजन उत्थानके एवं भगवद्दर्शनके एक नहीं, अनेक प्रमाण शास्त्रोंमें भरे पड़े हैं किन्तु आपलोग रुढ़िवादिताके कीचड़में इस प्रकार फंसे हुए हैं कि प्रमाणोंतकको माननेके लिए तैयार नहीं हैं। (पृ० ४)। विरोधियोंका मस्तिष्क कुविचार दोषसे भ्रष्ट हो चुका है ये किसी प्रकार सत्य सिद्धान्तको माननेके लिए तैयार नहीं हैं। (हरिजनमन्दिर प्रवेश पृ० ५)।

पश्यति' का अन्त्यज भाइयोंके अधिकारानुसार अर्थ यह होगा कि वे ज्योतिर्लिंगके मन्दिरके दर्शन कर लिया करें। जो ज्योतिर्लिंग अनावृत हो एवं जहाँ दर्शनकी सुविधा हो उनका साक्षात् दर्शन किया जा सकता है।

रामेश्वर लिंगका भी स्पर्शादि वर्जित

'हरिजन—स्मृति' ने एक वचन उद्धृत किया है—

रामेश्वरमहालिङ्गं यः पश्यति सभक्तिकम्।
न तेन तुल्यतामेति चतुर्वेद्यपि भूतले॥
पूजयेद् गन्धमाल्याद्यैर्भक्तो यः श्वपचोऽपि सन्।
(स्कन्द पुराण ब्रह्मखण्ड सेतु माहात्म्य अ० ३३ श्लोक २६।२७)

रामेश्वर महादेव जीके महाज्योतिर्लिंगका जो चाण्डाल हरिजन होकर भी भक्तियुक्त श्रद्धाके साथ गन्ध माल्य प्रभृतिसे पूजन दर्शन करता है; उसकी बराबरी पृथ्वीतलमें चारों वेदोंका निरन्तर पाठ करने वाला भी नहीं कर सकता।" (हरिजन-स्मृति पृष्ठ ३२)।

श्लोकोंका हुलिया खेमराजके संस्करणके अनुसार यह है—अ० ४३।३६-३७। श्लोकोंके उद्धरणमें भी कुछ उलट फेर है। तीसरी पंक्तिका संबंध अगली चतुर्थ पंक्तिके साथ है तथा उसमें 'रामेश्वर महालिङ्गे' को हटाकर 'पूजयेत् गन्धमाल्याद्यै' इतना अंश डाल दिया गया है। अर्थके अनुसार वचनका स्वरूप यह है—

रामेश्वर महालिङ्गं यः पश्यति सभक्तिकम्॥ ३६॥
न तेन तुल्यतामेति चतुर्वेद्यपि भूतले।
रामेश्वर महालिङ्गे भक्तो यः श्वपचोपि सन्॥ ३७॥
तस्मै दानानि देयानि नान्यस्मै च त्रयीविदे।

अर्थात् जो व्यक्ति भक्ति भावके साथ रामेश्वर महालिंगके दर्शन करता है। उसकी समता चारो वेद जानने वाले भी नहीं कर सकते। यदि श्वपच भी रामेश्वर महालिंगमें भक्तियुक्त है तो वेदज्ञोंकी अपेक्षा उसे दान करनेसे अच्छा फल होता है।

इस तरह इन श्लोकोंमें मन्दिर प्रवेश और बिंब स्पर्शकी तो गंध भी नहीं है।

गोकर्ण मन्दिरमें प्रवेश कथन ठीक नहीं

आपने लिखा "गोकर्ण मन्दिरमें सभी जातियोंका प्रवेश बताया है। जैसे—

तथान्येषां च विट्छूद्रसंकीर्णानां सहस्रशः।
इति सर्वेषु गच्छत्सु गोकर्णशिवमन्दिरम्॥

अर्थ—वैश्य, शूद्र तथा सभी संकीर्ण जातियां हजारोंकी संख्यामें गोकर्ण नामक शिवके मन्दिरमें प्रवेश करती हैं।" (हरिजन-स्मृति पृ० ३३)

आपने संकेत न किया कि ये वचन कहाँके हैं। अस्तु। 'गच्छत्सु' पदका 'प्रवेश करना' अर्थ शास्त्र संगत नहीं है। उसका सीधा अर्थ है—'गोकर्ण शिवमन्दिरको वे जा रहे थे'। ब्रह्मपुराणमें आया—'विष्णोः स निलयं गतः' (अ० १२०।४०)। आपकी रीतिसे इसका अर्थ यह होगा कि 'चाण्डाल विष्णु मन्दिरमें घुस गया।' किन्तु वहाँ यह अर्थ बाधित है। क्योंकि बादके श्लोकोंमें लिखा गया है कि संत चाण्डाल अपने अधिकारके अनुसार मन्दिरकी बाह्य भूमिपर बैठकर रात्रि जागरण किया करते थे। इसी तरह जंगलसे फूल लाकर वह मूर्तिपर चढ़ाते थे—

तानि प्रादाद् ब्राह्मणाय सोऽपि प्रक्षाल्य चाम्भसा।
विष्णुमभ्यर्च्य निलयं स जगाम तपोधनाः॥
सोऽपि मातंगदायादः सोपवासन्तु तां निशाम्।
गायन् हि बाह्यभूमिष्ठः प्रजागरमुपाकरोत्॥ (४२-४३)

अर्थात संत चाण्डालने जंगली फूल लाकर ब्राह्मणको दिया। ब्राह्मणने पहले तो उनका प्रक्षालन किया फिर उनसे विष्णुकी पूजा की और इसके बाद वे घर चले गये। संत चाण्डालने तो एकादशीका उपवासकर रखा था। अतः उसने मंदिरके बाहर बैठकर रात्रिजागरण किया और भगवानको संगीत सुनाया।

चाण्डालीकी कथा प्रवेशके पक्षमें नहीं

स्त्रियो वृद्धाश्च बालाश्च चतुराश्रमवासिनः।
दृष्ट्वा तत्रैत्य देवेशं लेभिरे कृतकृत्यताम् ॥
महाबलप्रभावात् ते तच्च लिङ्गं शिवस्य तु।
सम्पूज्यैकाथ चाण्डाली शिवलोकं गता द्रुतम् ॥
(शिव पु० कोटिरुद्र संहिता ८)

अर्थ वहाँपर देवेश शिव जीके दर्शन करके स्त्री, वृद्ध बालक तथा चारो आश्रमवासी उनके बड़े प्रभावके कारण कृतकृत्य हो गये। एक चाण्डाली (हरिजन स्त्री) उनकी पूजा करके तत्क्षण शिव लोकको चली गयी।"
(हरिजन स्मृति, पृ० ३४)।

यहाँ 'महाबल' शब्द शिवलिङ्ग विशेषका बोधक है। नवें अध्यायमें चाण्डालीकी पूरी कथा लिखी है। पहले जन्ममें वह ब्राह्मणी थी। विधवा होनेपर अपना आचरण ठीक न रख सकी। पीछे वह एक शूद्रके यहाँ उसकी स्त्रीके रूपमें रहने लगी। एक रातको वह मदिरा पीकर खूब छकी हुई थी। मांस खानेकी इच्छा जागी। भेड़ काटनेके लिए नंगी तलवार लेकर वह गोष्ठमें घुस पड़ी। एक तो अँधेरी रात थी, दूसरे था नशाका जोर। बस भेड़के भ्रमसे गायके बछड़ेको ही काट बैठी। पीछे बछड़ा जानकर शिव-शिव बोल उठी। बाद उसे खा गयी। कुछ दिनोंके बाद मर गयी। यमराजने उसके प्राक्तन कर्मके अनुरूप नरकवाससे निवृत्तकर चाण्डालके घर जन्म दिया—'यमोऽपि धर्मेमालोक्य तस्याः कर्म च पौर्विकम्। निवर्त्य निरयाच्चक्रे चाण्डाल जातिकाम् ॥१८॥ पापोंका जोर था। फलतः इस जन्ममें भी उसे काली-कलूटी जन्मान्ध, कुष्ठसे पीडित तथा अनाथ होना पड़ा। उससे विवाह भला कौन करता? किसी तरह अपनी अवस्था खेपकर वह बुढ़ापेमें आयी। एक शिवरात्रिको उसने यात्रियोंको गोकर्णमें आते देखा। उनसे भीख मांगती हुई वह इधर-उधर फिरने लगी। किसीने उसकी अंजलिमें

बिल्वकी मञ्जरी डाल दी। अभक्ष्य समझ उसने उसे दूर फेंक दिया। संयोगसे वह किसी शिव लिंगके मस्तकपर जा गिरी। उस दिन चतुर्दशी थी। भीख न मिलनेसे उस चाण्डालीका पवित्र व्रत और रात्रि जागरण भी हो गया। घर लौटते समय ठोकर लगनेसे उसकी मृत्यु हो गयी। अज्ञानमें भी किये गये पुण्यका फल यह हुआ कि वह शिवलोक भेज दी गयी।

यही कथा है। इससे यह सिद्ध नहीं होता कि वह चाण्डाली मंदिरमें घुसकर महाबल लिङ्गका स्पर्श कर आयी।

इसके बाद हरिजन-स्मृतिने जो तीन वचन उद्धृत किये हैं वे केवल पूजन परक हैं। उनसे मन्दिर प्रवेश सिद्ध नहीं किया जा सकता। किन्तु आपने लिखाः—"ब्रह्म पुराणके इस वचनसे भी चाण्डालोंका मन्दिर प्रवेश सिद्ध होता है।" (हरिजन-स्मृति पृ० ३५)

उद्धृत वचनोंमें दर्शन-पूजन मात्रका उल्लेख है। पहले लिखा जा चुका है कि अन्त्यज भाई भी अपने अधिकारके अनुसार दर्शन-पूजन कर सकते हैं। अतः पूजन और दर्शन शब्द देखकर मंदिर प्रवेश सिद्ध कर देना ठीक नहीं।

आपने लिखा "नूतन-लिङ्गार्चाशालग्रामादौ तु स्पर्शरहिता शूद्राद्यैः कार्य्या, तथा सा च विश्वेश्वरादिजीर्णलिङ्गार्चादौ स्वस्थापित-पार्थिवादि-लिंगादौ वा स्पर्शसहिता कार्या। ज्योतिर्लिंगको प्राचीन लिंग भी कहते हैं। उसके सिवा जो भी नूतन लिंग कहे जाते हैं; उनकी पूजा तथा शालग्रामकी पूजा स्त्री शूद्रादि जितने हैं वे सब विना स्पर्शके किया करें। पर विश्वनाथ प्रभृति ज्योतिर्लिङ्गको पूजा एवं स्वस्थापित लिंगोंकी पूजा तथा पार्थिवकी पूजा वे स्पर्श पूर्वक किया करें।...निबन्धकारोंने शूद्रादि श्वपचोंके लिए स्पष्ट प्रतिमा-स्पर्श पूर्वक देव पूजन विहित किया है"

जिसने शूद्रकमलाकर न देखा है वह उपर्युक्त उद्धरणसे सचमुच भयानक भ्रममें पड़ सकता है। सच बात यह है कि उपर्युक्त उद्धरणमें

"तथा सा च विश्वेशादिजीर्णलिङ्गार्चादो स्वस्थापितपार्थिवादिलिंगादौवा स्पर्शसहिता कार्या" इतना अंश छुसेड़ दिया गया है। और यही अंश भ्रमोत्पादक है। विश्वनाथ,रामेश्वर, वैद्यनाथ आदि ज्योतिर्लिंग अप्रतिष्ठित नहीं हैं। वर्तमान मन्दिरमें विश्वनाथ जीकी प्राणप्रतिष्ठा श्री नारायण भट्टने करायी थी। शास्त्रोंने स्थान पूजाका विधान किया है। भगवान रामने जब रामेश्वरकी स्थापना की थी तो वहाँका ज्योतिर्लिंग उसीमें सन्निहित हो गया था। द्विजातियोंके लिए नार्मद शिव लिंगमें भी प्राण प्रतिष्ठा कर लेना अधिक उपयुक्त ठहरता है।

"आज यह कह देना तो बड़ा दुस्तर है कि वह कौन-सी जाति है, जो ब्राह्मणीमें शूद्रसे पैदा हुई है (पृ० ११) कुछ जातियाँ जो आजकल अछूत कहीं जा रही हैं...वे जन्मना अस्पृश्य हैं, इसका प्रमाण नहीं है।"

आजकल हरिजन कही जानेवाली जातियाँ भी जन्मना अस्पृश्य हैं, यह तो आपके ही अन्य शब्दोंसे सिद्ध हो जाता है। अतः इस विषयपर अधिक विस्तार न कर आपके शब्दोंको ही उद्धृत कर देता हूँ। पृष्ठ ३१ की अंतिम पंक्तिमें 'चांडाली'का अर्थ 'हरिजनों' किया गया है। इसी-तरह 'चाण्डालादि हरिजनोंको देव दर्शनके लिए साक्षात विधि है।' (पृष्ठ ३२)। 'श्वपचोऽपिसन्' का अर्थ करते हुए आपने लिखा—'जो चंडाल हरिजन होकर भी' (पृष्ठ ३३)। 'एक चाण्डाली (हरिजन स्त्री) भी उनकी पूजा करके' (पृ० ३४)।

"पठन् द्विजो वागृषभत्वमीयात्, स्यात् क्षत्रियो भूमिपतित्वमीयात्।
वणिग्जनः पुण्यफलत्वमीयात्, जनश्च शूद्रोऽपिमहत्त्वमीयात्॥

आदिकवि वाल्मीकि (जो वन्य कुलोत्पन्न थे) रामायणकी महिमा वर्णन करते हुए लिखते हैं कि रामायणको द्विज पढ़े तो वह महान् सुवक्ता, क्षत्रिय पढ़े तो भूमिपति, वैश्य पढ़े तो पुण्य फलका भागी तथा शूद्र पढ़े तो महानता को प्राप्त होता है।" (हरिजन मन्दिर प्रवेश पृ० २)

महर्षि वाल्मीकि प्रचेताके पुत्र ब्राह्मण थे। कोल-भील आदि वन्य

कुलमें उनकी उत्पत्ति नहीं हुई थी। हाँ, वन्योंसे बहुत दिनोंतक उनका साथ अवश्य रहा। इस बातको स्वयं वाल्मीकिने कहा है—

अहं पुरा किरातेषु किरातैः सह वर्धितः।
जन्ममात्रं द्विजत्वं मे शूद्राचाररतः सदा ॥

इसी तरह 'शूद्र पढ़े तो महानताको प्राप्त हो' यह अर्थ भी संगत नहीं है। क्योंकि 'श्रोतव्यमेतच्छूद्रेण नाध्येतव्यं कदाचन' इस निषेध वाक्यके अनुरोधसे' पठन्' शब्दका सम्बन्ध शूद्रसे नहीं किया जा सकता और किया भी जाता है तो 'ब्राह्मणद्वारा' इस पदका अध्याहार कर! तब अर्थ होता है कि शूद्र ब्राह्मणके माध्यमसे पढ़े अर्थात् स्वयं न पढ़कर ब्राह्मणके द्वारा पाठ कराये—"शूद्रः पठन्नित्यस्य ब्राह्मण द्वारा पठन्नित्यर्थः स्वीक्रियते तदा नात्र शङ्का-समाधानावसरः।" (रामायण शिरोमणि)।

अन्य टीकाकारोंने 'पठन्' का शूद्र शब्दसे अन्वय ही नहीं किया। उन्होंने 'शृण्वन्' पदका अध्याहार कर अर्थ किया है कि 'इस मूलरामायणको यदि शूद्र सुने तो महत्त्वको प्राप्त हो'—"अत्र शृण्वन्नित्यध्याहारः (तिलक)। शूद्र इत्यत्र पठन्निति नानु सज्यते, किन्तु शृण्वन्नित्यध्याहारः"

जब निषेध वचन स्पष्ट है तो फलवाद वचनको उसके अनुकूल होना ही पड़ेगा। अर्थ करनेकी यह प्रणाली कोई हथकंडा नहीं है, अपि तु समन्वयका प्रशस्त राजपथ है। इसके विना एक पग भी चलना कठिन है। एक उदाहरण है—

विदुषा ब्राह्मणेनेदमध्येतव्यं प्रयत्नतः।
शिष्येभ्यश्च प्रवक्तव्यं सम्यङ् नान्येन केनचित् ॥

इसका यथाश्रुत अर्थ तो यह है कि 'शास्त्रको विद्वान ब्राह्मण ही पढ़े-पढ़ावे। अन्य कोई वर्ण ऐसा न करे'। किन्तु ऐसा अर्थ करने पर—

निषेकादिश्मशानान्तो मन्त्रैर्यस्योदितो विधिः।
तस्य शास्त्रेऽधिकारोऽस्मिन् ज्ञेयो नान्यस्य कस्यचित् ॥

—इत्यादि वचनोंका, जिनमें बतलाया गया है कि द्विजाति मात्र

शास्त्र पढ़ सकते हैं, विरोध स्पष्ट है। अतः जिस तरह 'अध्येतव्यं' का 'नान्येन केनचित' से सम्बध नहीं रखा जाता उसी तरह यहाँ भी 'पठन्' का शूद्रके साथ सम्बन्ध नहीं जोड़ा जाता।

रामायण, महाभारत, पुराण आदि शास्त्रोंमें वर्णित बहुतसे ऐसे शूद्रकुल उत्पन्न जन हुए हैं जिन्हे महर्षि शब्दसे पुकारा गया है—

वधमप्रतिरूपं तु महर्षेस्तस्य राघवः।
वज्राञ्ज व धर्मात्मा कौशल्यामिदमब्रवीत् ॥ (अयो०का० ६४।१)

यहाँ आदि कवि महर्षि वाल्मीकिने शूद्राबालक श्रवण कुमारको महर्षि शब्दसे संकेत किया है। जब श्रवण कुमारको महाराज दशरथ द्वारा बाण लगा तो मनुष्यके समान चित्कार सुनकर सम्राट्ने बालकका परिचय पूछा—श्रवण कुमारने कहा कि हे राजा मेरी माता शूद्रा है और मेरा पिता वैश्य है। उनसे मैं उत्पन्न हुआ हूँ—

शूद्रायायस्मि वैश्येन जातो नरवराधिप ! (पृ० ४-५)

'ऋषति-सर्वान मन्त्रान् ज्ञानेन पश्यति' इस व्युत्पत्ति और 'ऋषिर्दश-नात्' इस निरुक्तसे ऋषि शब्दका एक अर्थ होता है—मन्त्र द्रष्टा। किन्तु महापुरुष अर्थमें भी इस शब्दका प्रयोग होता है। जैसे— 'शौनकादिमहर्षयः' आजके लोग सन्त रमणके लिए 'रमण महर्षि' शब्दका प्रयोग कर ही रहे है। श्रवण कुमारके लिए 'महर्षि' पदका प्रयोग उसके महापुरुषत्वका ही ख्यापक है। श्रवण कुमार जब वेद पढ़नेका भी अधिकारी न था तब बेचारा मन्त्रका दर्शन कैसे कर पाता ? —'वैश्याच्छूद्रायां जातत्वेन संकरत्वात् वेदप्रसङ्गो नोक्तः'। (तिलक) अर्थात संकर जाति होनेके नाते महर्षि वाल्मीकिने उसके लिए वेद पढ़ना न बताया। इस लिए 'महर्षि' पदसे यह आशय नहीं निकाला जा सकता कि 'द्विजाति न होनेपर भी वाल्मीकिने श्रवण कुमारको मन्त्र द्रष्टा मान लिया और सूचित किया कि वेदका या मन्दिर प्रवेशका सबको अधिकार है।'

वाल्मीकिने श्रवण कुमारको जो इतना सम्मान दिया है उसका एकमात्र कारण यह है कि उसने शास्त्रप्रोक्त अपनी जातिके कर्मको तथा सामान्य कर्मको ठीक-ठीक निभाया था। वह निष्पाप था। उसका खान-पान और रहन-सहन आदर्श था वह नमस्कार मन्त्रसे सब धार्मिक क्रिया किया करता था। ये कार्य जब शूद्रके लिए उन्नायक माने जाते हैं तो श्रवण कुमारके लिए उन्नायक क्यों न होते ? वह जातिका शूद्र न था, शूद्रसे श्रेष्ठ था—

ततोऽप्यधिकस्य करणस्य स्वोचितमन्त्रैर्होमाधिकारस्य च कैमुत्यन्याय-सिद्धत्वात्। (गोवि० अयो० सर्ग ६४ श्लोक ३३)।

महाभारतने लिखा है कि अपना उद्धार चाहने वाला शूद्र जातिका पुरुष शम-दम आदि सदाचारका पालन करे, तथा वेद मन्त्र छोड़कर आत्मोन्नायक अन्य धार्मिक कृत्योंको करे—

सतां वृत्तमधिष्ठाय निहीना उद्दिधीर्षवः।
मन्त्रवर्जं न दुष्यन्ति कुर्वाणाः पौष्टिकीः क्रियाः॥

वाल्मीकिने तो श्रवण कुमारको 'महर्षि' मात्र कहा है किन्तु व्यासने परिनिष्ठित शूद्रोंको 'ब्रह्म' और 'विष्णु' तक कह डाला है—

वैदेहकं शूद्रमुदाहरन्ति द्विजा महाराज श्रुतोपपन्नाः। अहं हि पश्यामि नरेन्द्रदेव विश्वस्य विष्णुं जगतः प्रधानम्॥ (महाभा० शां० २९६।२८)

अर्थात् हे वैदेह, वेदज्ञ ब्राह्मण शूद्रको 'ब्रह्म' कहते हैं परन्तु मैं तो उन्हें जगत्का सर्वप्रधान 'विष्णु' कहता हूँ। इस तरह महर्षि पदसे "स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः"—इस सिद्धान्तको ही आदि कविने समझाया है।

'हरिजन मन्दिर प्रवेश' ने लिखा—"यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः। ब्रह्मराजन्याभ्या ँ शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय। प्रियो देवानां दक्षिणायै दातुरिह भूयासमयं मे कामः समृद्ध्यतामुपमादो नमतु। (यजु० २६।२)। परमात्माका आदेश है कि मनुष्यो, कल्याणी वाणी

(वेद) सर्व जनों अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, शूद्र, स्त्री, अनार्य आदि सबके लिए (जैसे मैंने प्रजाहितके लिए सर्गारम्भमें मानवको सुनाया था। वैसे तुमलोग भी सुनाओ।" (हरिजन मन्दिर प्रवेश पृ० २)

'यथेमां' मन्त्रसे न तो मन्दिर प्रवेश ही सिद्ध होता है और न मानव मात्रके लिये वेदके पढ़ने—पढ़ानेका अधिकार ही। आपने ईश्वर-को वक्ता और जनताको बोद्धा माना है। किन्तु वक्तृबोद्धव्यका यह निर्देश सम्प्रदाय प्राप्त नहीं है तथा श्रुति विरुद्ध भी है। सभी भाष्यकारोंने यहाँ यजमानको वक्ता माना है और इसका दूसरा ही अर्थ किया है। उनका आशय है—"मैं ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा शत्रुके लिए भी प्रिय ही वाणी बोला करता हूँ इसलिए देवताओं और दक्षिणा दाताओंका प्रिय बनूँ। धन आदिकी प्राप्तिरूप मेरा मनोरथ सिद्ध हो।"

नृसिंह पूर्व तापनी उपनिषद्ने स्पष्ट शब्दोंमें स्त्री और शूद्रका वेद पढ़ने-पढ़ानेके लिए निषेध किया है—"सावित्रीं प्रणवं यजुर्लक्ष्मीं स्त्री-शूद्राय नेच्छन्ति।" इसके बाद इसी श्रुतिने यह भी बतलाया कि यदि स्त्री शूद्र ओंकार आदिको पढ़ लें तो उन्हें नरक जाना पड़े। इसी तरह कोई शिक्षक यदि स्त्री-शूद्रको वेद पढ़ावे तो वह भी उनके साथ नरकको जाता है—"यदि जानीयात् स्त्रीशूद्रः स मृतोऽधो गच्छति यद्याचष्टे स आचार्यः तेनैव सह मृतोऽधो गच्छति।"

आपने लिखा—"इसी प्रकार महर्षि वेदव्यास निषाद कन्या सत्यवतीके पुत्र थे। महर्षि कवष ऐलूष जन्मसे शूद्र थे।" (हरि० मं० प्र० पृ० ५)।

निषाद सत्यवतीका धर्मपिता था—उसका पोषकमात्र था। सत्यवतीकी उत्पत्ति तो उपरिचरवसुके वीर्यसे हुई थी। (महाभा० आदिप० अ० ३६)

इसी तरह कवष ऐलूष ब्राह्मण ही थे, शूद्र न थे। ऋषियोंने इलूषाके पुत्र कवषको जो सोमयज्ञसे निकाल दिया था वह इसलिए कि वह पक्का जुआरी था अतः दीक्षा लेने योग्य न रह गया था। श्रुतिमें जो "दास्याः पुत्र कितवोऽब्राह्मणः कथं नो मध्ये दीक्षिष्ट" आया है वह उसकी

भर्त्सनाके लिए। भाष्यकारने लिखा है—"दास्याः पुत्रः" इत्युक्तिराक्षेपार्थः। वास्तविक दासीपुत्र अर्थमें षष्ठीका अलुक होता ही नहीं—"पुत्रेऽन्यतरस्याम्", "षष्ठ्याः पुत्रे परेऽलुग् वा निन्दायाम्।" इसी तरह 'कितवः अब्राह्मणः' का अर्थ करते हुए भाष्यकारने बतलाया है कि कवष वस्तुतः ब्राह्मण था, जूआ खेलनेके कारण आक्षेपमें उसे अब्राह्मण कहा गया—"कितवः = द्यूतकारः, तस्मादब्राह्मणोऽयम्।"[1]

"रूढ़िवादियों कौन होते हो हमें अन्त्यज कहने वाले? जो जन हमें अन्त्यज कहते हैं उनकी बुद्धि पापपूर्ण है।" (हरिजन मं० प्र० पृ० ६)

'अन्त्यज' शब्दका वही अर्थ होता है जो 'अनुज' का, अर्थात् छोटा

१. विस्तृत विवरणके लिए 'वर्ण विमर्श' की प्रतीक्षा करें। शीघ्र ही प्रकाशित होगी।

भाई। 'अन्त्यः सन् जातः" और 'अनु पश्चाज्जातः' यही दोनोंकी व्युत्पत्ति है। अतः स्नेह व्यञ्जक यह शब्द है। इसी लिए शास्त्रोंने पग-पगपर अन्त्यज शब्दका प्रयोग किया है। स्वयं आपने भी इसी पुस्तकमें 'अन्त्यज' शब्दका प्रयोग किया है। (देखिये पृ० १ पं० १८, पृष्ठ पं० १३)

यहाँसे श्री जे० पी० चौधरीजीकी 'मन्दिर प्रवेश' की आलोचनाकी जाती है। आपने लिखा—"उस समयके पंडितोंने प्रथम तर्क यह दिया था कि इस कार्यसे अलौकिक बाधा होती है।...कौन-सी अलौकिक बाधा होती है, बालकी खाल खींचनेवाले इन दार्शनिक पंडितोंने नहीं बतलाया" पृ०५

पंडितोंने अपने व्यवस्थापत्रमें शास्त्रीय बाधाओंका उल्लेख कर दिया था कि चाण्डाल आदिके स्पर्शसे पूजा करनेवाले, पूजाकी सामग्री और देवमूर्ति अशुद्ध हो जाती है। अतः उपर्युक्त आक्षेपका कोई आधार नहीं है। प्रस्तुत पुस्तकके दूसरे अध्यायमें हानियोंका परिगणन कर दिया गया है।

आपने लिखा—"वेदमें मूर्तिपूजाका विधान नहीं है, यदि कहें कि है तो इन पंडितोंमेंसे कोई बतलानेका साहस करे कि कौन ऋषिने इस विनियोगको किस ग्रन्थमें लिखा है।" (पृ० ६)।

वेदके ऐसे अनेक वचन हैं जिनसे मूर्तिपूजा सिद्ध होती है। ऋग्वेदमें जगन्नाथजीकी दारुमयीमूर्तिकी उपासनाका विधान है–"अदो यद् दारु प्लवते सिन्धोः पारे अपूरुषम्। तदारभस्व दुर्हणो तेन गच्छ परस्तरम्।" (८.८।१३।३)। षविंड्श ब्राह्मणका "दैवतायनाति कम्पन्ते दैवतप्रतिमा हसन्ति" (५।१९) वचन बहुत प्रसिद्ध है। कालिका पुराणने यजुर्वेदके "मनोजूतिर्जुषतामाज्यस्य०" (२।१३) इस मन्त्रको तथा "अस्मै प्राणाः प्रतिष्ठन्तु०" को प्राण प्रतिष्ठामें विनियुक्त किया है–"अस्मै प्राणाः प्रतिष्ठन्तु अस्मै प्राणाः चरन्तु च। अस्मै देवत्वमर्चायै स्वाहेति यजुरीरयन्॥ अङ्गि-मन्त्रै रङ्गमन्त्रै र्वैदिकैरित्यनेन च। प्राणतिष्ठां सर्वत्र प्रतिमासु समाचरेत्॥ (अङ्गमन्त्रैः="मनोजूतिर्जुषतामाज्यस्येतिमन्त्रैः)। (स्मृतितत्त्व, तिथि तत्त्व पृष्ठ ७७-७८)"। यहाँ स्मरणीय है कि ऋषि-प्रमुख ब्रह्मा पुराणोंके आदि स्मर्ता हैं[1]। शिव पुराणने पार्थिव लिंगकी प्राणप्रतिष्ठामें "नमोऽस्तु नीलग्रीवाय" इस वेद मन्त्रको विनियुक्त किया है। (दे० वि० स०२०।११)

आपने लिखा—"जिस भिल्लनीके जूठे बेरको खा लेनेसे स्वयं राम भ्रष्ट नहीं हुए, उसी भीलके मन्दिरमें जानेसे उसी रामकी मूर्ति क्या अपवित्र

(१) देखिए "वैदिकी" पृ ३१-३४; १८१-९८६।

हो जायगी?" (पृ० ६)

किसी प्रामाणिक पुस्तकमें भगवान रामके लिए शबरीके जूठे बेर खाने-की बात नहीं लिखी है। अर्चा विग्रहमें अवतारी विग्रहसे भी अधिक पवित्रता अपेक्षित है ऐसा पृ० ४० में दिखलाया जा चुका है।

आपने लिखा—"वह (मूर्तिपूजा) भी मूर्खोंके लिए है।...पत्थरकी मूर्तियाँ इन्हीं शूद्रों और अन्त्यजोंके लिए बनायी गयी हैं—"शिलालिङ्गं तु शूद्रानां महाशुद्धिकरं शुभम्।" पत्थरकी प्रतिमा ब्राह्मणादि त्रैवर्णिकोंके लिए नहीं है।" (पृ० ६)

सनत्कुमार जैसे सिद्ध भी लिंग दर्शन किया करते थे। (देखिए काशी केदार माहात्म्य)। 'शिलालिङ्गन्तु'का यह अर्थ करना कि "शिलालिंग शूद्रोंके

लिए ही है ब्राह्मणादिके लिए नहीं" नितांत असंगत है। पूरे श्लोकका भाव यह है कि ब्राह्मणके लिए पारदलिंग, क्षत्रियके लिए वाणलिंग, वैश्यके लिए स्वर्णलिंग तथा शूद्रके लिए प्रस्तरलिंग विशेष फलप्रद है। इसके बाद वाले श्लोकमें स्पष्ट ही लिख दिया गया है कि विशेष लिंग न रहने पर दूसरे वर्णके लिंगका पूजन निषिद्ध नहीं है—"स्वीयाभावेऽन्यदीयंतु पूजायां न निषिद्ध्यते"। (शि० पु० वि० सं० १८।५०) अतः द्विजाति भी पत्थरके लिंगको पूज सकते हैं।

आपने लिखा—"देवलक (मन्दिरके पुजारी) को छूकर सचैल स्नान करनेके लिए पुराण कहता है। देवलक और चाण्डाल दोनोंके लिए समान व्यवस्था है, फिर क्या वजह है कि पुजारीको जब मन्दिरमें जानेके लिए रोक-टोक नहीं तब चाण्डादिके मन्दिर प्रवेशमें क्यों बाधा डालते हैं।"

जिस नारद पुराणने देवलक और चाण्डालके लिए सचैल स्नानकी बात लिखी है उसने वहींपर शूद्रके लिए भी वही व्यवस्था लिखी है-"आर्द्रास्थि च तथोच्छिष्टं शूद्रञ्च पतितं तथा सर्वञ्च भषणं स्पृष्ट्वा सचैलं स्नानमाचरेत्।" (२६।३०)। आपके अर्थके अनुसार तो शूद्रके स्पर्शसे भी सचैल स्नान करना पड़ जायगा ? क्योंकि "शूद्र और चाण्डालके लिए समान व्यवस्था है ?" इस तरह आपका प्रश्न आपपर ही हावी हो जाता है। असल बात यह है कि यहाँ 'यूप' 'देवलक' और 'शूद्र' शब्द सामान्य वाची नहीं है। जैसे सभी 'शूद्र और 'यूप' अस्पृश्य नहीं हैं उसी तरह सभी 'देवलक' भी अस्पृश्य नहीं हैं। शूद्रोंमें जैसे निरवसित शूद्र और यूपोंमें जैसे वध्य स्थलीका यूप अस्पृश्य है उसी तरह श्मशानस्थ मन्दिरके पुजारीको छूकर स्नान करना पड़ता है। अर्थवादसे यहाँ उन देवलकोंको भी गर्हित बतलाया गया है जो भक्तिभाव शून्य हो मूर्तिको दर-दर घुमाते-फिरते हैं तथा देवकोषसे जीते हैं। (देखिये वाचस्पत्याभिधान)।

किन्तु आपने पुराणोंमें अर्थवादका न होना माना है और इसके लिए "पुराणेष्वर्थवादत्वं ये वदन्ति नराधमाः। तैरर्जितानि पुण्यानि क्षयं यान्ति

द्विजोत्तमाः (ना० पु० १।५७)" यह प्रमाण प्रस्तुत किया है। किन्तु आपने इस श्लोकके पूर्वपदको छिपा लिया है। वह पद है—"निन्दायां कलहे वापि ह्यसन्तः पापतत्पराः" इस वचनमें तो केवल उन लोगोंकी निंदा की गयी है जो निंदा और कलहकी सिद्धिमें पुराणको अर्थवाद कह उसका तिरस्कार करते हैं। अतः इस वचनसे अर्थवादका खंडन करना अनुचित है।

इसके बाद आपने ब्रह्मपुराणके गौतमीमहात्म्यके ९६ वें अध्यायमें आयी एक भीलकी कथासे मन्दिर प्रवेश सिद्ध करना चाहा है। वनमें एक शिवलिंग था। वेद नामक एक ब्राह्मण वेद विधिसे पूजा करता था। वेदके चले जानेके बाद एक महाभक्त भील लिंगपर चढ़े बिल्वपत्र आदिको पैरसे हटाकर कुल्लेसे शिव जीको नहलाता और मांसका नैवेद्य लगाता था। उसकी महाभक्तिसे रीझकर शिव उससे बातचीत भी करते थे। वेदने छिपकर यह क्रिया देखी। खीझकर बोला—"तुम भीलसे बातें करते हो और मुझसे क्यों नहीं? ठहरो, तुमपर पत्थर पटक देता हूँ!" शिव बोले-"तुममें और भीलमें अन्तर है। कल छिपकर देखना।" दूसरे दिन लिंगसे रक्तस्राव हो रहा था। यह 'अद्भुत' देख वेद चकराया और उसकी शान्ति कर दी। किन्तु रक्तस्राव बंद न हुआ। भील आया। अपने प्रियतमके रक्तस्रावको वह सह न सका। तुरंत अपने शरीरको टुकड़ेकर लिंगपर चढ़ा दिया।

इस कथासे न तो मन्दिर प्रवेश सिद्ध किया जा सकता है और न यही सिद्ध होता है वेद विहित पूजा निषिद्ध है। इसमें उस परानुरक्तिकी प्रशंसा भर है जो विधि-निषेधसे ऊपरकी चीज है। ऊँची भूमिपर पहुँचनेपर विधि-निषेधके सारे बन्धन टूट जाते हैं। साध्य पा लेनेके बाद साधन छूट ही जाता है—"सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज" (गीता)। लङ्का जानेके लिए जहाजका सहारा आवश्यक है, साथ ही उसका छूटना भी आवश्यक है। संत भीलके हृदयमें दिव्य प्रेमका वही सागर सीमा लांघकर हिलोरें ले रहा था। प्रेमके दीवानेपनमें वह और सब कुछ भूल बैठा था—"नैव किञ्चिद् विजानाति शिवभक्तिं विना शुभाम्" (१२)। इसीलिए मन्दिर और

मूर्तिकी जो पवित्रता अपेक्षित है—"प्रमादेनापि नान्तर्देवसदने पुरीषं कुर्यात्" (भस्मजा० श्रुति २।१६)—उसकी उससे उपेक्षा हो गयी। यदि इस कथासे मन्दिर प्रवेश सिद्ध किया जाय तो इससे वैदिक विधिकी हेयता, मूर्तिको पैरोंसे ठुकराना, कुल्लेसे स्नान कराना और मांसका नैवेद्य लगाना भी सिद्ध हो जायगा ? तब तो विदुरानीकी तरह सभी साध्वियोंके लिए न॰॰ ॰डंग होकर भगवानके पास जाना तथा गुद्दी फेंककर छिलकेका ही भोग लगाना सिद्ध किया जा सकेगा ? जिस तरह विदुरानीकी कथा प्रस्तुत करनेमें ग्रन्थका यह तात्पर्य नहीं है कि सभ्यताकी प्रथा तोड़ दी जाय, उसी तरह भीलकी कथाका यह तात्पर्य नहीं है कि मन्दिर और मूर्तिकी मर्यादा तोड़ दी जाय ? स्वयं ब्रह्मपुराणने संत भीलके इस आचरणको अवैध माना है—"तथापीशस्तुतोषास्य विचित्रा हीश्वरस्थितिः" (१।१४)—और संत चाण्डालकी दूसरी कथा प्रस्तुतकर स्पष्ट कर दिया है कि अन्त्यज भाइयोंको बाहर रहकर ही पूजन आदि करना चाहिए—"गायन् ही बाह्यभूमिष्ठः प्रजागरमुपाकरोत्।" (अ० १२०।४२)।

शास्त्रीय मार्यादाकी रक्षाके लिए भगवान स्वयं तो अवतार लेते ही हैं कुछ लोगोंसे उपेक्षित मर्यादाकी रक्षा भी कभी-कभी कर देते हैं। प्रेमदीवानी विदुरानीसे जब मर्यादाका उल्लंघन हो गया तो भगवानने अपने दुपट्टेसे उसकी रक्षा कर ली। इसी तरह अनभिज्ञतावश मंदिर और मूर्तिकी मर्यादा यदि नष्ट हो जाती है तो दयालु ईश्वर संप्रोक्षण आदिसे स्वयं उसकी रक्षा कर देते हैं—"ब्राह्मे मुहूर्ते मणिकर्णिकायां स्नात्वा समाराधयति स्वमेव। अस्पृश्य संस्पर्श-विशोधनाय कलौ नराणां कृपया हिताय॥"

इसके बाद 'मन्दिर प्रवेश' ने भस्म और ऊर्ध्वपुंड्रके अर्थवादवाले वचनोंको उद्धृत कर यह तर्क उपस्थित किया है कि भस्म और ऊर्ध्वपुंड्र लगाकर अन्त्यज मंदिरमें जाया करें। (पृ० ८-१०)।

अर्थवादका ऐसा दुरुपयोग अच्छा नहीं है। यदि इन वचनोंसे मन्दिर प्रवेश सिद्ध किया जा सकता है तब तो यह भी सिद्ध किया जा सकता है

कि केवल भस्म लगाया जाय और इसके अतिरिक्त समस्त धर्म-कर्मको छोड़ दिया जाय ? तब मन्दिरमें जानेकी ही क्या आवश्यकता रह जाती है ?

आपने लिखा कि हारीत आदि स्मृतियोंमें द्विजातियोंके लिए न तो मूर्तिपूजाका विधान है और न अन्त्यजोंके लिए प्रवेश निषेध ही। (पृ० १०)

अन्त्यज मन्दिर प्रवेशके विरुद्ध हारीत स्मृतिका वचन पृष्ठ २७ में दिखलाया गया है और यह भी दिखलाया जा चुका है कि विशेषकर द्विजातियोंके लिए ही मूर्तिपूजा आदि शास्त्रीय कर्म हैं। हारीतका एक वचन और दे देता हूँ—"शालग्रामार्चने विष्णुस्तस्मिन् सन्निहितस्तथा। मूर्तीनान्तु हरेस्तस्य यस्यां प्रीतिरनुत्तमा॥ तस्यामेवतु तां ध्यात्वा पूजयेत् तद्विधानतः।"

आपने लिखा—"हारीतस्मृतिमें यह बात लिखी है कि जो ब्राह्मण शिवलिंगकी पूजा करता है वह चांडाल है—"रुद्रार्चनाद् ब्राह्मणस्तु शूद्रेण समतां व्रजेत्। यक्षभूतार्चनात् सत्तश्चण्डालत्वमवाप्नुयात्।" (पृ० १०)

अर्थवादका समझना आसान नहीं है।[1] इस वचनमें केवल यही बतलाया गया है कि दीक्षा प्राप्त लोग अर्चासांकर्य न करें (देखिए ईश्वर सं० अ० १६, १३३—१३४; १३५-१३६; ४५३-४६०; समूर्तार्चाधिकरण पृ० ४४३)। उपर्युक्त वचनका शब्दार्थ यह है कि यक्षभूतकी पूजा करनेसे चाण्डाल सदृश हो जाता है।' अतः आपने जो यह अर्थ किया "जो ब्राह्मण भस्म धारण करता है, शिव लिंगकी पूजा करता है वह चाण्डाल है" यह बिलकुल निर्मूल है। वचनमें ब्राह्मणको 'शूद्र सदृश'भर कहा है।

भृगुसंहिताके "चाण्डालैरन्त्यजैश्चैव तथान्यप्रतिलोमजैः म्लेच्छैश्च नीचचाण्डलैः" इस वचनपर आपके दो तर्क हैं। (१) "चाण्डाल अन्त्यजके अन्तर्गत हैं इसीलिए जब अन्त्यज आ गया तो चाण्डाल शब्द का लाना पुनरुक्ति दोष ग्रस्त है (२) यदि अन्त्यज शब्दको चाण्डालका विशेषण मान लेते हो तो सब अन्त्यजोंका इससे ग्रहण नहीं होता। अतः सिवाय एक चाण्डालके और किसी दूसरे चमार आदि अन्त्यजोंको मन्दिर

(१) देखिए "वैदिकी" पृष्ट ३७ से ४० तक

प्रवेशमें निषेध हो नहीं सकता।" (पृ० ११-१२)

वचनमें 'चाण्डाल' और 'नीच चाण्डाल' आया है। चाण्डालके तीन भेद होते हैं—उत्तम चाण्डाल, मध्यम चाण्डाल, नीच चाण्डाल। अतः पुनरुक्ति दोष नहीं है। अर्थमें आपने नीच शब्द छोड़ दिया है इसलिए आपको वैसा भ्रम हुआ है। दूसरे तर्कका भी इसीसे उत्तर हो जाता है।

इसके बाद आपने एक लाईन छोड़कर व्यास स्मृतिका—वचन उद्धृत किया है और उसके द्वारा बढ़ई, माली, आदिको अन्त्यज मानकर प्रश्न उठाया है—"बताओ इन सबोंको मन्दिरमें क्यो जाने देते हो (और)......हरिजनोंके प्रति इतना द्वेष क्यों ? (पृष्ठ १२-१३)।

वचनका ठीक-ठीक स्वरूप यह है—

वर्द्धकी नापितो गोप आशापः कुम्भकारकः।
वणिक्—किरात—कायस्थ—मालाकार—कुटुम्बिनः
एते चान्ये च बहवः शूद्रा भिन्नाः स्वकर्मभिः। १०।

इस उद्धरणसे बढ़ई, माली आदि शूद्र ही ठहरते हैं, अन्त्यज नहीं। इसके बाद "चर्मकारो भटो" आदि शब्दोंसे व्यासस्मृतिने अन्त्यज जनोंका पृथक् उल्लेख किया है। केवल "एतेचान्ये च०" इस पंक्तिको छिपा लेनेसे आपके उपर्युक्त सन्देहकी गुंजाईस थी।

आपने लिखा—"शुचितकालजीवी कर्म कुर्यात्—पंडितोंने इसे श्रुतिके नामसे लिखा है।...यदि कोई इसे वेदमें दिखला देगा तो १०००) परितोषिक दूगां।" (पृ० १३-१४)।

व्यवस्था पत्रमे 'तत्काल' शब्द है। इससे मिलते-जुलते शब्द 'अर्थसंग्रह' में है—'शुचिविहित काल जीविनः' (पृ० ७)। 'उपासना आदि कर्म पवित्रता पूर्वक करना चाहिए ऐसी श्रुति है' यह व्यवस्था पत्रका तात्पर्य है। देवकर्मको पवित्रता पूर्वक करनेमें तो कोई विवाद नहीं है। अतः एतदर्थक श्रुतिकी माँग कोई अर्थ नहीं रखती। "न वा अव्रतस्य देवा अश्नन्ति" (ऐत० ७। ११) "न वा अनार्षेयस्य देवा हविरश्नन्ति"

(कौषी ० ३, २६) आदि श्रुतियाँ इस बातको कहती ही हैं। रह गयी आनुपूर्वी दिखलानेकी बात। तो यह माँग भी अनुचित है। मान लीजिए किसी व्यक्तिने अपने पुत्रको कहा—"सन्ध्या किया करो, प्रतिदिन सन्ध्योपासन करना चाहिये यह श्रुति है" तो उसपर जालसाजीका आरोप क्या केवल यह कहकर लगाया जायगा कि तुम इस आनुपूर्वीको वेदमें दिखाओ?

आपने लिखा "छायाके स्पर्शसे और दर्शन मात्रसे अपवित्र होनेका प्रमाण किस धर्मशास्त्रमें है?......इसके लिए भी १०००) इनाम।"

अत्रि स्मृतिके "यस्तु छायां श्वपाकस्य ब्राह्मणस्त्वधिगच्छति स च स्नानं प्रकुर्वीत घृतं प्राश्य विशुद्धयति॥" इस वचनमें छायास्पर्श और व्यास स्मृतिके "दर्शनादर्कवीक्षणम्" इस वचनमें दर्शन मात्रसे अपवित्र होनेकी बात कही गयी है।

आपने लिखा "मागध स्पृश्य हैं। अस्पृश्य नहीं।" (पृ० १५) मागध दो प्रकारके हैं—स्पृश्य और अस्पृश्य। मनु (१०-११) ने वैश्यसे क्षत्रियामें उत्पन्नको मागध कहा है। ये स्पृश्य हैं। वैखानस गृह्यसूत्रने वैश्यसे ब्राह्मणीमें उत्पन्नको मागध कहा है और उन्हें अस्पृश्य माना है— "वैश्याद् ब्राह्मण्यां मागधः शूद्रैरप्यभोज्यान्नोऽस्पृश्यः" (१० । १३)।

आपने लिखा "पंचरात्र तो पापियों और वेदबाह्य लोगोंके लिए हैं। विष्णुने शिवसे कहा वेद बाह्योंकी रक्षाके लिए हम दोनों शास्त्र बनावें।

वेदानुकूल आगम प्रमाण हैं। योगी याज्ञवल्क्यने लिखा है— सांख्यं योगः पंचरात्रं वेदाः पाशुपतं तथा। अतिप्रमाणान्येतानि हेतुभिर्न विरोधयेत्।" वाराह पुराणने लिखा—"वेदोक्तविधिना भद्रे आगमोक्तेन वा सुधीः॥" उपरिचर राजाकी प्रशंसामें महाभारतने पंचरात्रकी प्रशंसा की है—"पञ्चरात्रविदो मुख्यास्तस्य गेहे महात्मनः। प्रापणं भगवत्प्रोक्तं भुञ्जते चात्र भोजनम्॥" विष्णुधर्मोत्तरने

लिखा—"सांख्यं योगः पञ्चरात्रं वेदाः पाशुपतं तथा। कृतान्तपञ्चकं विद्धि ब्रह्मणः परिमार्गणे॥"

आपने लिखा—"दर्शनं गेहचूड़ाया दर्शनं गोपुरस्य च। अन्त्यजानां तथान्त्यानां विज्ञेयं देवदर्शनम्।" अन्त्यजों और शूद्रोंको केवल स्तूप दर्शन अथवा कलश दर्शन करा देवे। इससे तो शूद्र भी वर्जित हो गये?" (पृ० १९)।

कुल्लूकने मनुके "अन्त्यादपि परं धर्मं" श्लोकमें 'अन्त्य' का चांडाल अर्थ तथा 'चाण्डालान्त्यस्त्रियो गत्वा' में 'अन्त्य' का म्लेच्छ अर्थ किया है। अतः म्लेच्छ आदि वर्जित हुए, न कि शूद्र।

इसके बाद आपने ब्राह्मण द्वारा शूद्र स्थापित मूर्तिके प्रणाम न करनेका प्रमाण माँगा है तथा अन्त्यजोंके लिए ओंकार सहित पंचाक्षरी जपकी बात ठहरायी है (पृ० २१-२२)

निर्णय सिन्धुने "यः शूद्रसंस्कृतं लिङ्गं विष्णुं वापि नमेन्नरः। इहैवात्यन्तदुःखानि पश्यत्यामुष्मिके किमु॥" आदि वचन देकर शूद्र प्रतिष्ठापित मूर्तिके प्रमाणका निषेध किया है। पीछे दिखलाया जा चुका है कि स्त्री-शूद्र आदिका ओंकारमें अधिकार नहीं है तथा शूद्र और अन्त्यजके लिए अधिकारानुसार पंचाक्षरीका स्वरूप क्या है।

यह ठीक है कि अत्रिने कुछ ब्राह्मणोंको निषाद कहा है, पर उन्होंने 'पशु' भी तो कहा है? अतः 'तत्सदृश' अर्थ है। आगेके वचन भी सदृशपरक हैं। तीर्थयात्राके प्रसंगसे वंग आदि देशोंमें जाया जा सकता है। जिस वेदने शिल्पकार आदिको नमस्कार किया है। उसीने "नमः श्वभ्यः" कहकर कुत्तोंको भी तो प्रणाम किया है? यहाँ सब रूपमें रुद्रका नमस्कार है। "पंचजना" मंत्रमें यजमान कहता है कि मेरे यज्ञमें सभी जन आयें। ईश्वर वक्ता नहीं हैं। वेद नित्य नूतन है। सृष्टि न रह जायगी पर वेद इसी आनुपूर्वीमें तब भी रहेगा। वेदमें आये चांडाल आदि शब्द पोष्टके वाची हैं; वैसे ही, जैसे शासन विधानके शब्द।

'मानव'

(सत्य घटना प्रधान त्रैमासिक)

सचाईकी परखके लिए सर्वमान्य कसौटी प्रस्तुत करनेका विश्वका पहला प्रयास। पत्र-साहित्यमें अनूठा और सरस उपयोगितावादी कदम। विश्वके प्रत्येक देश, प्रत्येक राष्ट्र, प्रत्येक जाति और प्रत्येक धर्मके लिए एक समान मधुर एवं पुष्टिकर पथ और पाथेय प्रस्तुत करनेवाला पत्र।

वार्षिक चंदा २) मात्र।

व्यवस्थापक 'मानव'

गोयनका सं० कालेज, ललिताघाट, काशी

पुस्तक मिलनेका दूसरा पता—

श्री द्वारकाप्रसाद नायक, करमई, बार, झांसी।